बाल कहानियां भाग- 6

# तराजू का करिश्मा

कन्हैया लाल ''मत्त''

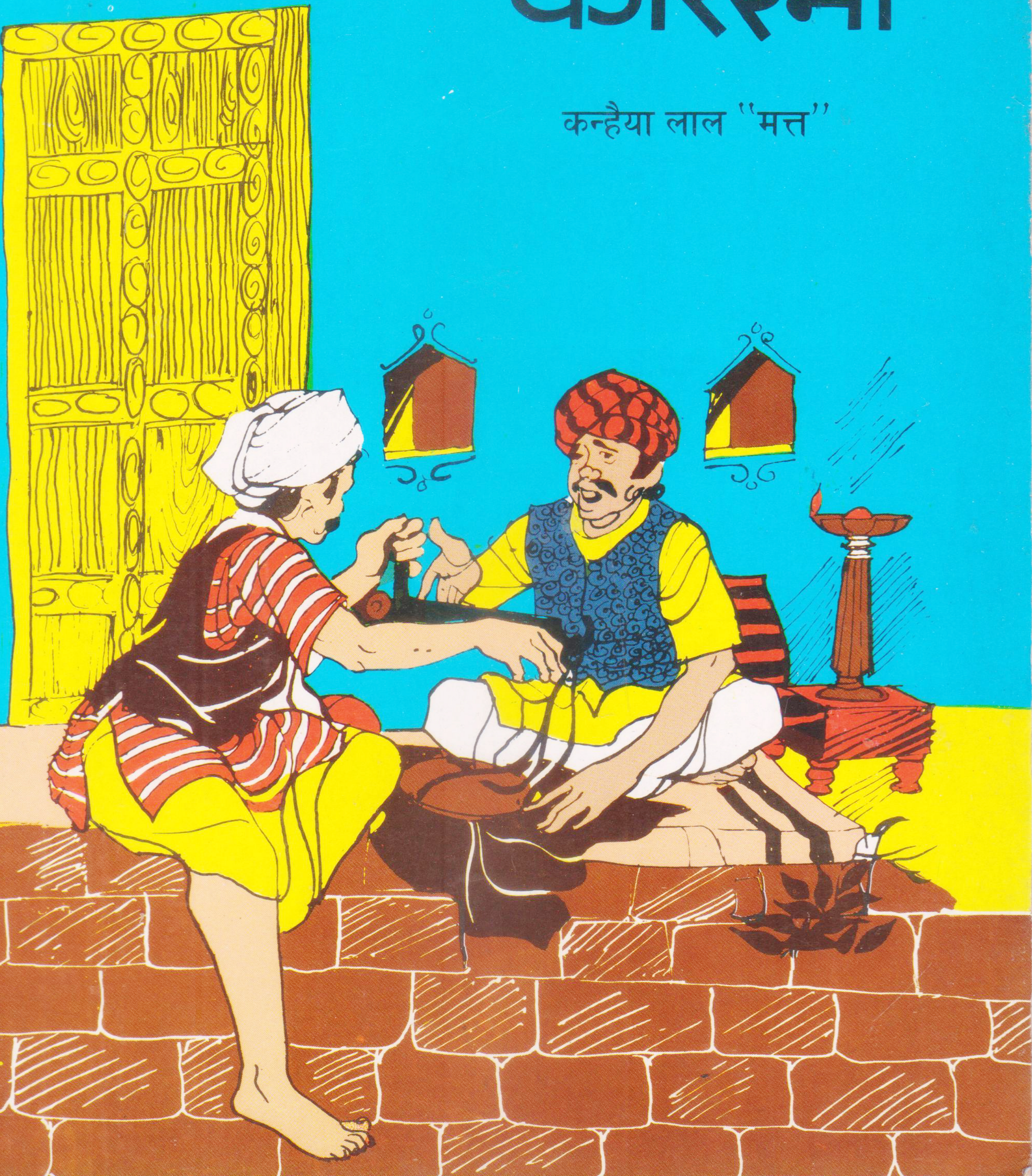

बाल कहानियां भाग-6

# तराजू का करिश्मा

कन्हैया लाल "मत्त"

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

माघ 1911 (फरवरी 1990)

© प्रकाशन विभाग

मूल्य : 12 रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार,
पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित ।

**विक्रय केन्द्र ● प्रकाशन विभाग**

- सुपर बाजार, (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई-400038
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069
- एल.एल.ए. आडीटोरियम, 736, अन्नासलै, मद्रास-600002
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिग, अशोक राजपथ, पटना-800004
- निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम-695001
- 10-बी, स्टेशन रोड, लखनऊ-226019
- राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500004

दिल्ली प्रेस, ई-3, झंडेवाला एस्टेट, रानी झांसी मार्ग, नई दिल्ली-110055 द्वारा मुद्रित ।

# प्रकाशकीय

कहानियां बच्चों को सबसे अधिक आकर्षित करती हैं। ये कहानियां यदि रोचक भी हों, तो बच्चे और अधिक आकृष्ट होते हैं। किन्तु, यदि कहानियों में मनोरंजन के साथ-साथ कोई शिक्षा या प्रेरणा भी हो, तो उनमें सार्थकता भी आ जाती है।

किसी समय कहानियों में उपदेशों की भरमार होती थी। आज वह समय नहीं रह गया है। आज के वैज्ञानिक युग में बच्चे सीधे-सीधे उपदेश पसंद नहीं कर सकते। विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने उनके मानसिक स्तर को एक नए धरातल पर ला खड़ा किया है। किन्तु इसके साथ-साथ यह भी सत्य है कि बच्चों को सद्प्रवृत्तियों और स्वस्थ जीवन-मूल्यों की ओर प्रेरित करना भी आवश्यक है।

ऐसी स्थिति में यदि बच्चों के लिए शिक्षाप्रद कहानियों को रोचक और मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत किया जाए तो बच्चे उन्हें आसानी से ग्रहण कर सकेंगे। कहानियों की सार्थकता भी इसी में है।

प्रकाशन विभाग का सदैव यही उद्देश्य रहा है कि अपने बाल पाठकों को मनोरंजक और शिक्षाप्रद कहानियां उपलब्ध कराई जाएं। हमारे अनुरोध पर प्रस्तुत कहानियां वरिष्ठ कवि और कथाकार श्री कन्हैया लाल ''मत्त'' ने इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए, 'पंचतंत्र' और 'हितोपदेश' को आधार बनाकर प्रस्तुत की हैं।

आशा है, इन कहानियों से बच्चों का मनोरंजन होने के साथ-साथ उन्हें स्वस्थ जीवन जीने की प्रेरणा भी मिलेगी।

डा. श्याम सिह शशि
निदेशक

# विषय सूची

| | | |
|---|---|---|
| 1. | तराजू का करिश्मा | 1 |
| 2. | भाग्यशाली मूर्ख | 7 |
| 3. | बोलने वाला पेड़ | 14 |
| 4. | कंजूस का हवाई किला | 20 |
| 5. | चुहिया का ब्याह | 22 |
| 6. | टिटहरी के अंडे | 27 |
| 7. | कुलघाती मेंढक | 33 |
| 8. | दो मुंह वाला पक्षी | 39 |
| 9. | सोने की दलदल | 43 |
| 10. | पढ़े-लिखे पोंगा | 47 |

# तराजू का करिश्मा

**क्या** कोई चूहा लोहे की तराजू को खा सकता है? नहीं न! पर साहूकार ने तो यही कहा था! यही कह कर उसने अपने मित्र को धोखा दिया और पूरी तराजू हजम कर गया! पर... पर तराजू भला हजम कैसे हो सकती थी! तराजू तो न्याय का प्रतीक होती है। वह बेईमान को उसकी बेईमानी का मजा चखाकर ईमानदारी का ही तो साथ देती। यह न्याय ही तो तराजू का करिश्मा था।

बहुत पुरानी बात है। एक नगर में जीर्णधन नाम का एक व्यापारी रहता था। उसके पास बहुत धन था। वैसे तो वह पूरा नगर ही वैभवशाली था और हर प्रकार से समृद्ध था तथा वहां रहने वाले लगभग सभी व्यापारी बहुत धनवान थे, किंतु जीर्णधन के पास तो अपार धन व सम्पत्ति थी। वह बहुत दयालु और दानवीर था।

एक बार जीर्णधन पर विपत्ति आ गई। उसे व्यापार में बहुत घाटा हो गया, यहां तक कि उस पर बहुत-सा कर्ज भी चढ़ गया था। उसके दुर्दिनों में किसी ने भी उसका साथ नहीं दिया। जिन लोगों की उसने हमेशा सहायता की थी वे भी उसकी विपत्ति में उससे मुंह मोड़ गए। यह देख कर उसे बहुत दुख हुआ और उसने वह नगर छोड़ कर परदेश जाने का विचार किया। उसने सोचा कि जिस नगर में मेरा इतना मान-सम्मान रहा है, उसमें लोगों का रूखा व्यवहार देखने के लिए मैं यहां क्यों रहूं? जो व्यक्ति किसी स्थान पर एक बार गर्व के साथ वैभव और विलासपूर्ण जीवन बिता लेता है और फिर विपत्ति के समय निर्धन होकर भी उसी स्थान पर टिका रहता है, वह निश्चय ही दूसरों की निन्दा का पात्र बन जाता है। लोग उसका मजाक उड़ाने लगते हैं।

काफी सोच-विचार के बाद उसने उस नगर से अन्यत्र चले जाने का निश्चय कर लिया। चूंकि उस पर कर्ज भी चढ़ गया था, इसलिए जाने से पहले वह उस कर्ज से भी मुक्त होना चाहता था, अन्यथा उसकी सारी अर्जित प्रतिष्ठा धूल में मिल जाती। अतः उसने अपने घर का सारा सामान बेच कर कर्ज चुकाया। परदेश जाते हुए वह कोई सामान अपने साथ नहीं ले जाना चाहता था।

वैसे तो कर्ज उतारने के चक्कर में उसने अपना लगभग सारा सामान बेच दिया था, किंतु फिर भी छोटा-मोटा सामान बचा रह गया था। इस सामान में एक काफी भारी तराजू भी थी, जो उसके पूर्वजों के समय से चली आ रही थी। वह अपने पुरखों की इस यादगार को बेचना नहीं चाहता था। इसलिए उसने इसे अपने एक अन्य मित्र साहूकार के पास धरोहर के रूप में रखने का विचार किया और उसे लेकर वह अपने मित्र के पास पहुंचा।

अपने साहूकार मित्र के पास पहुंच कर उसे तराजू देते हुए वह बोला, "मित्रवर, मैं परदेश जा रहा हूं। मैं अपने साथ कोई सामान नहीं ले जाना चाहता। मैं ने काफी सामान तो बेच दिया है। अब

यह तराजू ही मेरे पास बची रह गई है। यह तराजू हमारे परिवार में कई पीढ़ियों से चली आ रही है और पुरखों की यादगार होने के कारण यह मुझे प्राणों से भी ज्यादा प्यारी है। अतः मैं इसे बेचना नहीं चाहता। मैं इसे अपने साथ ले भी नहीं जा सकता, इसलिए मैं बड़ी चिंता में पड़ गया हूं कि इसका क्या करूं?"

मित्र साहूकार बोला, "इसमें चिंता की क्या बात है, जीर्णधन! तुम इसे अपने घर पर रख जाओ और जब कभी वापस आओ तो इसका इस्तेमाल करना।"

जीर्णधन बोला, "तुम ठीक कहते हो, मित्र! लेकिन एक बात की ओर शायद तुम्हारा ध्यान नहीं गया। वह यह कि मेरे पीछे यदि कोई चोर इस तराजू को चुराकर ले गया, तो मैं क्या करूंगा! मैंने सोचा है कि इसे तुम्हारे पास धरोहर के रूप में रख जाऊं और जब वापस आऊंगा तो तुमसे ले लूंगा। यदि तुम्हें कोई आपत्ति न हो, तो यह धरोहर तुम अपने पास रख लो।"

मित्र साहूकार तराजू देखकर मन ही मन ललचा गया। क्योंकि इतनी भारी तराजू बहुत दुर्लभ थी और जीर्णधन के परदेश से वापस लौटने की सम्भावना बहुत कम थी। अतः यह तराजू आजीवन उसी के पास रह जाएगी। यह सोचकर वह मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ, किंतु अपनी प्रसन्नता को छिपाता हुआ वह बोला, "वैसे मुझे कोई आपत्ति नहीं है, किंतु मुझे एक ही भय है कि यह तराजू तुम्हें अपने प्राणों से भी प्यारी है। इसलिए इस धरोहर की रक्षा करने की जिम्मेदारी भी मेरी हो जाएगी। यदि कहीं यह नष्ट हो गई, तो मैं तुम्हें बाद में क्या मुंह दिखाऊंगा!"

जीर्णधन बोला, "मुझे तुम पर विश्वास है। तुम इसे अपनी तराजू की तरह सुरक्षित रखोगे। इसलिए तुम चिंता मत करो और इसे अपने पास रख लो। जब मैं वापस लौटूंगा, तो ले लूंगा।"

"ठीक है।" कहकर साहूकार ने तराजू अपने पास रख ली।

पूरी तरह निश्चिंत होकर जीर्णधन नगर छोड़कर परदेश चला गया। परदेश जाकर जीर्णधन ने अपने बुद्धि-कौशल से नया व्यापार शुरू किया और बहुत धन कमाया। अब उसकी आर्थिक स्थिति पहले जैसी ही अच्छी हो गई। फिर से धनवान हो जाने के बाद उसे अपने नगर की याद आने लगी। उस नगर में उसके पुरखों का बनवाया हुआ घर था, जिसमें वह बचपन से रहता चला आया था। उसने सोचा कि अब मैं निर्धन तो हूं नहीं, जो मेरे नगर के लोग मेरी उपेक्षा करेंगे। धनवान हो जाने के बाद वे लोग मुझे पहले जैसा ही सम्मान फिर देने लगेंगे। अतः उसने अपने नगर जाने का निश्चय कर लिया।

नगरवासियों ने जीर्णधन के लौट आने पर उसकी बहुत आवभगत की। उन्हें पता चल गया था कि जीर्णधन फिर से धनवान हो गया है। जीर्णधन भी नगरवासियों का सम्मान पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। वह अपने व्यापार को सुव्यवस्थित करने लगा। तभी उसे अपने पुरखों की धरोहर उस तराजू का ध्यान आया, जो उसने अपने मित्र साहूकार के पास रख दी थी। वह तुरंत उस तराजू को वापस लेने साहूकार के पास गया।

साहूकार ने जीर्णधन को देखा, तो मन ही मन बहुत दुखी हुआ। ऊपरी तौर पर उसने जीर्णधन का स्वागत किया और बोला, "कहो मित्र, तुम कुशल से तो हो! परदेश में तुम्हारा व्यापार कैसा चल रहा है?"

जीर्णधन बोला, "मित्र, तुम्हें यह जानकर प्रसन्नता होगी कि मैंने परदेश जाकर बहुत धन कमाया और अब मेरी स्थिति पहले जैसी ही हो गई है। मैं वहां रहकर और भी बहुत-सा धन कमा सकता था, किंतु मुझे अपने इस नगर से बहुत प्यार है। यह मेरे पुरखों का नगर है और यहीं पर मेरे सारे बंधु-बांधव रहते हैं। इसलिए मैंने अधिक धन का लालच न करके अपने घर लौट आना ही उचित समझा। अब मैं अपने घर लौट आया हूं।"

साहूकार ने यह सुना तो उसे बहुत दुख हुआ। किंतु वह दिखावे के लिए बोला, "यह तो तुमने बहुत अच्छा किया। अपने नगर के बंधु-बांधवों से जो स्नेह मिलता है, वह परदेश में कहां मिल पाता है? अब तुम यहां आ गए हो, तो अपना व्यापार संभालो और अपनी पहले जैसी प्रतिष्ठा प्राप्त करो।"

जीर्णधन कुछ झिझकता हुआ बोला, "असल में मैं तुम्हारे पास इसलिए आया हूं कि तुम मुझे मेरे पुरखों की यादगार वह तराजू लौटा दो, जो मैं तुम्हारे पास धरोहर के रूप में रख गया था।"

साहूकार ने यह सुना तो उसे मानो सांप सूंघ गया। वह फटी-फटी आंखों से जीर्णधन की तरफ देखने लगा। जीर्णधन की समझ में कुछ नहीं आया। वह बोला, "क्या हुआ मित्र! तुम एकाएक चुप क्यों हो गए!"

साहूकार रोता हुआ-सा मुंह बनाकर बोला, क्या बताऊं, मित्र! मैं तो कुछ कह पाने की स्थिति में ही नहीं हूं! मैं तुम्हारे सामने बहुत शर्मिंदा हूं। तुम अपनी धरोहर मेरे पास रख गए थे, किंतु मैं उसे सुरक्षित नहीं रख सका।"

''क्यों? क्या हुआ?'' जीर्णधन आश्चर्य से बोला।

''मित्र, इसे मैं अपना दुर्भाग्य ही कहूंगा, क्योंकि यह मेरे वश की बात नहीं थी! मैंने तुम्हारी धरोहर संभाल कर रख दी थी, परंतु एक दिन जब मैं उसे देखने गया, तो मैंने पाया कि तुम्हारी उस तराजू को तो चूहे खा गए थे। मैं तो स्वयं बहुत चकित हुआ, किंतु मैं इसमें कर ही क्या सकता था!'' साहूकार रोनी सूरत बनाकर बोला।

जीर्णधन ने यह सुना, तो उसे साहूकार पर बहुत क्रोध आया। वह समझ गया कि साहूकार की नीयत खराब हो गई है और वह उसकी धरोहर को हजम कर जाना चाहता है। उसके जी में आया कि वह उसका गला पकड़ ले, किंतु अपने क्रोध पर संयम बरतते हुए उसने कहा, ''कोई बात नहीं मित्र! तुम दुखी मत हो। यदि चूहे तराजू को खा गए, तो इसमें तुम्हारा क्या दोष है? यह तो संसार ही ऐसा है, यहां कोई भी चीज हमेशा कायम नहीं रहती। तुम चिंता मत करो।''

साहूकार को जीर्णधन की बात सुनकर कुछ संतोष हुआ। फिर भी वह बोला, ''मैं तुम्हें इसकी भरपाई कर दूंगा, मित्र!''

''तुम कैसी बातें करते हो! मैंने कहा न, तुम बिलकुल चिंता मत करो। जो होना था, हो गया। अब मन को कष्ट देने से क्या लाभ? तुम उस तराजू को भूल जाओ।'' जीर्णधन ने कहा और साहूकार से विदा लेकर अपने घर लौट आया।

लेकिन जीर्णधन स्वयं तराजू को नहीं भूल सकता था। भूलता भी कैसे! वह उसके पूर्वजों की धरोहर जो थी। उसे साहूकार से यह आशा न थी। साहूकार के व्यवहार से उसे बहुत दुख पहुंचा था!

कई दिन तक वह उदास रहा। पूर्वजों की धरोहर वह तराजू हर समय उसकी आंखों के सामने बनी रहती। वह सोचता कि तराजू तो न्याय का प्रतीक है और उसके लिए ही मेरे साथ इतना बड़ा अन्याय हो गया!

वह कई बार रात को जाग जाता और तराजू को याद करने लगता। सपने में भी उसे अक्सर तराजू दिखाई दे जाती और वह नींद में ही बड़बड़ाने लगता—''धोखा!... सरासर धोखा!... नहीं, मैं यह अन्याय सहन नहीं करूंगा! ... तराजू मेरी है! मैं अपनी तराजू लेकर रहूंगा!''

आखिर एक दिन जीर्णधन ने साहूकार को उसकी इस बेईमानी का मजा चखाने का निश्चय किया। वह इसका उपाय सोचता रहा, और अंततः उसने एक उपाय सोच ही लिया। अगले दिन जीर्णधन साहूकार के पास गया। साहूकार उसे देखकर घबराया और बोला, ''कहो मित्र, कैसे आना हुआ?''

जीर्णधन बोला, ''मैं नदी में स्नान करने जा रहा हूं। तुम अपने पुत्र धनदेव को मेरे साथ भेज दो। वह नहाने का सामान पकड़कर मेरे साथ चलेगा।''

साहूकार मन ही मन घबराया हुआ था। क़िंतु वह जीर्णधन की बात टालने में असमर्थ था। वह भयभीत था। कुछ क्षण सोचकर वह अपने पुत्र से बोला, ''बेटे, यह तुम्हारे चाचा स्नान करने के लिए नदी पर जा रहे हैं। तुम नहाने का सामान लेकर इनके साथ चले जाओ।''

साहूकार का पुत्र अपने पिता की आज्ञा पाकर जीर्णधन के साथ खुशी-खुशी चल दिया।

नदी पर पहुंचकर जीर्णधन ने स्नान किया और फिर साहूकार के लड़के को स्नान करने के लिए कहा। जब वह स्नान कर चुका, तो जीर्णधन उसे मंदिर में भगवान के दर्शन कराने के बहाने नदी के पास ही बनी एक गुफा में ले गया और उसे वहीं बंद करके अपने घर लौट आया।

जब शाम गहरी हो गई और जीर्णधन, साहूकार के बेटे को लेकर वापस नहीं लौटा, तो साहूकार को चिंता होने लगी। उसे कुछ शंका हुई। उसे लगा कि कहीं जीर्णधन ने उसके बेटे को गायब तो नहीं कर दिया है। वह घबराया हुआ जीर्णधन के घर पहुंचा। सौभाग्य से जीर्णधन वहीं मिल गया। किंतु उसके साथ साहूकार का बेटा नहीं था। अब तो साहूकार को पक्का शक हो गया। उसने जीर्णधन से पूछा, ''जीर्णधन, तुम मेरे बेटे को अपने साथ नदी पर ले गए थे, किंतु वह अभी तक घर नहीं लौटा है। तुम बताओ, वह कहां है?''

''क्या बताऊं, मित्र! मैं तो शर्म की वजह से तुम्हारे पास नहीं आ सका। आज तो मेरे साथ भी भाग्य ने मजाक कर डाला!'' जीर्णधन ने मुंह लटकाकर कहा।

''क्यों! क्या बात हुई?'' साहूकार ने घबराकर कहा।

जीर्णधन बोला, ''मैं नदी में स्नान कर रहा था और तुम्हारा बेटा मेरे कपड़ों की देखभाल कर रहा था। तभी अचानक एक बाज उड़कर आया और उसे उठाकर ले गया।''

यह सुनकर साहूकार को बहुत क्रोध आया। वह गुस्से में ही बोला, ''झूठे! मक्कार कहीं के! क्या कोई बाज इतने बड़े बच्चे को उठाकर ले जा सकता है!... चुपचाप मेरे बेटे को बुलाकर मुझे सौंप दे, नहीं तो मैं दरबार में जाकर न्यायाधिकारी से तेरी शिकायत कर दूंगा।''

जीर्णधन ने कहा, ''अरे, सत्यवादी! झूठों का महाझूठा तो तू खुद है। तू कैसे कह सकता है कि बाज इतने बड़े बच्चे को उठाकर नहीं ले जा सकता! मैं ने स्वयं देखा है! क्या तुझे मेरी बात का कोई विश्वास नहीं है? यदि तू मुझे झूठा बता कर न्यायाधिकारी से मेरी शिकायत करना ही चाहता है तो कर दे लेकिन पछताना ही पड़ेगा।''

जब झगड़ा ज्यादा बढ़ गया, तो दोनों लड़ते-लड़ते न्यायालय में पहुंचे। वहां पहुंचकर साहूकार जोर-जोर से चीखने लगा, ''श्रीमान जी! अनर्थ हो गया! अनर्थ हो गया!! इस चोर ने मेरा बेटा चुरा लिया है! इससे मेरा बेटा दिलाया जाए!''

न्यायाधिकारी ने जीर्णधन से कहा, ''कहां है इसका बेटा? इसे तुरंत वापस दो।''

जीर्णधन बोला, ''श्रीमान जी, मैं क्या करूं? मेरे देखते-देखते एक बाज नदी किनारे से इसके बेटे को उठा ले गया।''

न्यायाधिकारी यह सुनकर बोला, ''तुम झूठ बोल रहे हो। क्या बाज में इतनी ताकत होती है कि वह एक बच्चे को उड़ाकर ले जाए!''

जीर्णधन बोला, ''श्रीमान जी! इसमें आश्चर्य की क्या बात है! जहां लोहे की भारी तराजू को चूहे खा जाता हों, वहां बाज भी बच्चे को उड़ाकर ले जा सकता है। आपको व्यर्थ ही संशय हो रहा है।''

यह सुनकर न्यायाधीश चौंका और बोला, ''वह कैसे! तुम मुझे सारी बातें विस्तार से समझाओ, क्योंकि तुम्हारी पहेली मेरी समझ में नहीं आ रही है।''

तब जीर्णधन ने न्यायाधीश के सामने शुरू से अंत तक का सारा किस्सा कह सुनाया। पूरा किस्सा सुनने के बाद न्यायाधीश ने झगड़े को निपटाते हुए साहूकार को जीर्णधन की तराजू वापस करने का आदेश दिया और उसे उसका बेटा वापस दिलवा दिया। जीर्णधन अपनी तराजू वापस लेकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसे इस बात की भी प्रसन्नता थी कि उसने धूर्त साहूकार को अच्छा सबक सिखा दिया था। अपनी विजय को वह उस तराजू का ही करिश्मा बता रहा था।

# भाग्यशाली मूर्ख

कभी-कभी ऐसे संयोग हो जाते हैं कि उनकी वजह से घटनाएं नया मोड़ ले लेती हैं और भाग्य के सहारे मूर्ख भी विद्वान समझ लिया जाता है। हरि शर्मा के साथ भी यही हुआ।

हरि शर्मा बहुत मूर्ख था। मूर्खता की वजह से वह किसी भी काम को सफलतापूर्वक नहीं कर पाता था, अतः लोग उससे काम कराने में डरते थे। वह न तो कोई व्यापार ही कर सकता था और न कोई परिश्रम का काम ही कर पाता था। वह पढ़ा-लिखा भी नहीं था। अतः अध्यापन का कार्य भी उसके बस का नहीं था। फलस्वरूप वह कोई भी काम कर पाने में असमर्थ था। इसी कारण वह निर्धन भी था। जिस तरह कोढ़ में खाज कोढ़ को और ज्यादा बढ़ा देती है, उसी प्रकार हरि शर्मा के साथ एक सबसे बड़ी मुसीबत यह भी थी कि उसके बेटे भी कई थे। ऐसी स्थिति में उसके परिवार का गुजारा चल पाना बड़ा मुश्किल हो गया था और वह अपना तथा अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिए भीख मांगने पर मजबूर हो गया था। उसके साथ-साथ उसका परिवार भी भीख मांगकर किसी तरह अपना गुजारा कर रहा था।

एक बार वह सपरिवार भीख मांगता-मांगता एक अन्य शहर में पहुंचा। वहां उसकी भेंट स्थूलदत्त नाम के एक धनी व्यक्ति से हुई। स्थूलदत्त ने उसे सपरिवार भीख मांगते देखा, तो उसे बहुत क्रोध आया। वह बोला, "तुम्हें इतने बड़े कुटुम्ब के साथ भीख मांगते शर्म नहीं आती! तुम कोई काम क्यों नहीं करते!

हरि शर्मा मूर्ख होने के साथ-साथ धूर्त भी बहुत था। असमर्थता का ढोंग करते हुए उसने अपना सिर नीचे झुका लिया और बोला, "मैंने बहुत कोशिश की, लेकिन मुझे कहीं पर भी कोई काम नहीं मिला। जब मेरा परिवार भूखों मरने लगा, तो मुझे अपना पेट भरने के लिए भीख मांगनी पड़ी। भीख मांगने में मुझे शर्म तो बहुत आती है, लेकिन मैं क्या करूं! मैं मजबूर हूं। इतने बड़े परिवार का भरण-पोषण और कैसे करूं!"

"यदि तुम्हें कोई काम मिल जाए, तो क्या तुम करोगे?" स्थूलदत्त ने पूछा।

"क्यों नहीं! मैं अवश्य करूंगा, श्रीमन!" हरि शर्मा प्रसन्न होकर बोला।

"तो ठीक है! तुम आज से ही मेरे यहां काम पर लग जाओ। मैं तुम्हें ही नहीं, तुम्हारे सारे कुटुम्ब को काम दिए देता हूं।" स्थूलदत्त ने कहा।

हरि शर्मा खुशी से चहकता हुआ बोला, "मुझे क्या करना होगा, श्रीमन! मेरी पत्नी और मेरे बच्चों को क्या काम सौंपेंगे! मैं आपका आजीवन ऋणी रहूंगा। यदि आपने हम सबको काम दे दिया, तो हमें दरिद्रता के नरक से मुक्ति मिल जाएगी। कृपया शीघ्र ही बताइए कि हमें क्या करना होगा?"

"तुम और तुम्हारी पत्नी दोनों मेरे घर पर रहकर नौकरी करेंगे और तुम्हारे बेटे हमारी गायों की देखभाल करेंगे।" स्थूलदत्त बोला।

इस प्रकार हरि शर्मा और उसका समस्त परिवार स्थूलदत्त की सेवा में समय व्यतीत करने लगा। उन सबको भीख मांगने से मुक्ति मिल गई थी।

कुछ समय बाद स्थूलदत्त की बेटी का विवाह हुआ। इस अवसर पर स्थूलदत्त के बहुत से नाते-रिश्तेदार भी एकत्रित हुए। यह सब देखकर हरि शर्मा ने सोचा कि सेठ स्थूलदत्त अपनी बेटी के विवाह में बहुत सारा धन लगाएगा और कुछ दिन तक उसे और उसके परिवार को पकवान और तर माल भर-पेट खाने को मिलेंगे। उसने कई वर्षों से पकवान नहीं खाया था, अतः वह पकवान के बारे में सोच-सोचकर मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हो रहा था। किंतु, जब सेठ स्थूलदत्त और उसके परिवार वालों ने उससे और उसके कुटुम्ब से खाने को नहीं पूछा, तो वह बहुत दुखी हुआ।

भोजन और मिठाई आदि न मिल पाने की वजह से वह अपने आपको बहुत अपमानित महसूस कर रहा था। किंतु, वह किसी से कुछ बोला नहीं। रात को जब उसकी पत्नी ने उसके दुखी होने का कारण पूछा, तो वह बोला, "गरीब और मूर्ख होने की वजह से ही मेरा यह अपमान हुआ है! यह स्थूलदत्त इतना कठोर होगा, ऐसा मैं सपने में भी सोच सकता था!"

"किंतु, स्थूलदत्त ने तुम्हारा क्या अपमान कर दिया?" उसकी पत्नी बोली।

"अपमान!...इसने हमसे भोजन तक के लिए नहीं कहा! इससे ज्यादा हमारा और क्या अपमान हो सकता है?... किंतु, मैं भी इस अपमान का बदला लेकर रहूंगा। मैं कोई ऐसी चाल चलूंगा जिससे यह स्थूलदत्त मेरा लोहा मान जाए और मेरा सम्मान करने लगे।" हरि शर्मा गुस्से से बोला।

"तुम ऐसी क्या चाल चलोगे, जो स्थूलदत्त तुम्हारा सम्मान करने लगे? वह तो तुम्हें मूर्ख समझता ही है। और वही क्या, तुम्हें तो सभी लोग मूर्ख समझते हैं। ऐसे में तुम्हारे पास ऐसा क्या जादू है, जो वह तुम्हारा लोहा मान जाएगा! तुम कोई और मूर्खतापूर्ण आचरण न कर बैठना!" पत्नी ने उसे समझाते हुए कहा।

हरि शर्मा कुछ क्षण सोचने लगा, फिर बोला, "मैंने एक योजना बनाई है, तुम उसमें मेरा साथ देना। यदि मेरी यह योजना सफल हो गई, तो स्थूलदत्त मेरा बहुत सम्मान करने लगेगा।"

"क्या है आपकी योजना? जरा मुझे भी तो बताइए!... और उसके लिए मुझे क्या करना होगा!" पत्नी चकित होकर बोली।

"तुम्हें स्थूलदत्त से केवल इतना कहना है कि मेरे पति पंडित हरि शर्मा बहुत विद्वान और महान ज्योतिषी हैं!" हरि शर्मा ने कहा।

पत्नी के चले जाने पर हरि शर्मा योजना बनाने लगा।

रात को जब सब लोग सो गये, तो हरि शर्मा उठा और चारों ओर देखने लगा। तभी उसे वह घोड़ा दिखाई दिया जिस पर बैठ कर स्थूलदत्त का दामाद दूल्हे के रूप में आया था। उसने घोड़े को घर से कुछ दूर ले जाकर एक गुप्त स्थान पर छिपा दिया और आकर सो गया।

सुबह जब सब लोग उठे, तो घोड़ा न देखकर परेशान हो गए। नौकर-चाकरों ने उसे बहुत तलाश किया। परंतु घोड़ा नहीं मिला। स्थूलदत्त को जब घोड़े के गायब हो जाने की सूचना मिली, तो उसे बहुत दुख हुआ। उसने मन में सोचा कि घोड़े का चोरी हो जाना एक अशुभ घटना है और यह अशुभ घटना मेरी बेटी के विवाह के शुभ अवसर पर घटित हो गई है। अब मेरी बेटी का वैवाहिक जीवन कैसे सुखी हो सकेगा? यह सब सोचकर वह घबराने लगा। उसे घबराया हुआ देखकर, हरि शर्मा की पत्नी उसके पास पहुंची और बोली, ''श्रीमन, आप इतना घबरा क्यों रहे हैं?''

''दूल्हे का घोड़ा चोरी चला गया है और उसका कहीं पता नहीं चल रहा है। सब लोग खोज कर हार गए हैं। विवाह के अवसर पर ऐसी अशुभ घटना ठीक नहीं है। अब मैं क्या करूं?'' स्थूलदत्त घबराया हुआ बोला।

''तो, इसमें घबराने की क्या बात है? मेरे पति ज्योतिष-विद्या में बहुत निपुण हैं। आपने सब जगह घोड़े की खोज करा ली, किंतु मुझे आश्चर्य है कि आपने उनसे इस बारे में कोई चर्चा तक नहीं की!'' हरि शर्मा की पत्नी बोली।

यह सुनकर स्थूलदत्त की जान में जान आई। उसने तुरंत ही हरि शर्मा को बुलाया और सारी समस्या बताते हुए बोला, ''कृपया मेरी सहायता कीजिए और ज्योतिष के आधार पर पता लगाइए कि घोड़ा कहां होगा!''

हरि शर्मा कुछ अकड़ कर बोला, ''सेठ जी, यह तो बड़ी अजीब बात है। कल दावत के समय तो मेरी सुध किसी को नहीं आई और एक मामूली से घोड़े के चोरी चले जाने पर मुझे इस तरह याद किया जा रहा है!''

स्थूलदत्त लगभग गिड़गिड़ाता हुआ बोला, ''कल हमसे जो भूल हो गई थी उसके लिए हमें क्षमा करें, ज्योतिषीजी! मैं आपके पांव पड़ता हूं। आप हमें कृपया जल्दी से जल्दी यह बताइए कि घोड़ा किसने चुराया है! आपकी इस कृपा को मैं कभी नहीं भूलूंगा।''

हरि शर्मा ने एक कागज लेकर उस पर यों ही बनावटी रेखाएं खींचीं और कुछ सोचता हुआ बोला, ''यहां से दक्षिण दिशा की ओर नगर की सीमा के पास ही एक स्थान पर चोरों ने घोड़े को छिपाकर रखा हुआ है। वे उसे कहीं दूर ले जाना चाहते हैं, अतः उनके वहां से चले जाने के पहले ही आप अपना घोड़ा ले आएं, नहीं तो वह आपको फिर कभी नहीं मिल पाएगा।''

यह सुनकर स्थूलदत्त के हर्ष की सीमा न रही। उसने तुरंत अपने नौकर-चाकरों को घोड़ा पकड़ कर ले आने का आदेश दिया।

नौकर-चाकर तत्काल ही उस स्थान पर भागकर गए और वहां से घोड़े को ले आए। घोड़ा मिल जाने पर स्थूलदत्त बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने हरि शर्मा की ज्योतिष-विद्या में निपुणता की

बहुत प्रशंसा की। वहां पर मौजूद अन्य लोगों ने भी हरि शर्मा के ज्योतिष-ज्ञान का लोहा मान लिया और उसे परम विद्वान समझकर उसकी पूजा भी की।

इसके बाद से स्थूलदत्त के घर में हरि शर्मा और उसके परिवार का बहुत सम्मान होने लगा।

इस घटना को अभी कुछ ही दिन बीते थे कि किसी चोर ने राजा के महल से बहुत-सा सोना और अन्य आभूषण चुरा लिये। बहुत खोज करने पर भी चोर का पता नहीं चल पा रहा था। तभी राजा को किसी दरबारी ने बताया कि उस नगर में सेठ स्थूलदत्त के घर में हरि शर्मा नाम का विद्वान रहता है जो ज्योतिष-विद्या में बहुत निपुण है। राजा ने तुरंत एक सेवक के माध्यम से हरि शर्मा को बुलवा भेजा।

राजा का सेवक स्थूलदत्त के घर पहुंचकर हरि शर्मा के बारे में पूछने लगा। उसने कहा— ''हरि शर्मा को राजा ने उनके ज्योतिष-ज्ञान की वजह से बुलवाया है।''

हरि शर्मा ने जब राजा द्वारा बुलवाए जाने की बात सुनी, तो वह मन-ही-मन थर-थर कांपने लगा। उसने सोचा कि राजा के सामने अगर भेद खुल गया, तो राजा अवश्य ही उसे फांसी पर चढ़वा देगा। हरि शर्मा लगभग रोने लगा। किंतु, वह राजा के आदेश की अवहेलना नहीं कर सकता था। अतः वह सेवक के साथ राजा के पास चल दिया।

राजा के पास पहुंचकर हरि शर्मा ने उन्हें प्रणाम किया।

''राजा ने हरि शर्मा को देखकर कहा, ''सुना है, तुम बहुत बड़े ज्योतिषी हो!''

उत्तर में हरि शर्मा ने केवल हाथ जोड़ दिए।

राजा ने फिर कहा, ''देखो, हरि शर्मा! हमने तुम्हारे ज्योतिष-ज्ञान की बहुत प्रशंसा सुनी है। हमारे सेवक ने तुम्हें यह तो बता ही दिया होगा कि हमारे महल से किसी चोर ने बहुत-सा धन और आभूषण चुरा लिए हैं। हमने चोर को तलाश करने की पूरी कोशिश की है, किंतु अभी तक उसका कुछ पता नहीं चल पाया है। अब तुम अपने ज्योतिष-ज्ञान के आधार पर उस चोर का पता लगाओ।''

हरि शर्मा ने राजा का आदेश सुना, तो वह बुरी तरह घबरा गया। उसने मन-ही-मन सोचा कि अब तो फांसी पर चढ़ना निश्चित है। कुछ देर मौन रहकर वह राजा से बोला, ''राजन! मैं कोई बहुत बड़ा विद्वान तो नहीं हूं। मुझे थोड़ी-बहुत ज्योतिष आती है। फिर-भी मैं आपके आदेश का पालन करते हुए अपनी पूरी कोशिश करूंगा कि चोर का पता लग जाए।''

राजा ने सोचा कि महान व्यक्ति अपने बारे में इसी तरह संकोचपूर्ण बातें करते हैं। उसने मन-ही-मन हरि शर्मा के संकोच की प्रशंसा की और बोला, ''हम आपका संकोच समझ रहे हैं। इसी से यह स्पष्ट हो जाता है कि आप निश्चित रूप से बहुत बड़े ज्योतिषी हैं। आप प्रयास कीजिए। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप चोर का पता अवश्य लगा लेंगे।''

राजा की बात सुनकर हरि शर्मा के मन में और अधिक भय समा गया। मन-ही-मन ईश्वर को याद करता हुआ वह राजा से बोला, "राजन! मुझे कल सुबह तक का समय दीजिए। मैं चोर का पता लगाने का पूरा प्रयास करूंगा।"

"ठीक है। हमें कोई जल्दी नहीं है। आप कल तक हमें चोर का पता बता दीजिए। तब तक आप हमारे अतिथि-कक्ष में ही ठहरें। मैं आपके विश्राम की व्यवस्था कराए देता हूं।" राजा ने कहा।

राजा से अनुमति लेकर हरि शर्मा अतिथि-कक्ष की ओर चल दिया। उसे यह चिंता सताए जा रही थी कि वह चोर का पता कैसे लगाएगा! ज्योतिष न जानने की असलियत का पता जब राजा को चलेगा, तो वह अवश्य ही मृत्यु-दंड देगा। स्थूलदत्त को मूर्ख बनाने का दंड अब उसे मिलेगा ही। अतिथि-कक्ष में पहुंचकर वह लेट गया और अपनी करनी पर पछताता रहा। राजा का अतिथि-कक्ष उसे काल-कोठरी लग रहा था। उसने कुछ देर सोने की भी कोशिश की, किंतु उसे नींद नहीं आई। वह करवटें बदलता रहा।

राजा के यहां 'जिह्वा' नाम की एक दासी थी। वास्तव में उसी ने अपने भाई के साथ मिलकर राजा के महल से सोना तथा आभूषण चुराए थे। उसे जब हरि शर्मा के बारे में यह पता लगा कि वह बहुत विद्वान और ज्योतिषी है, तो उसे बहुत जिज्ञासा हुई। उसे आशंका हुई कि यदि हरि शर्मा को वास्तविकता का पता चल गया तो मेरा पकड़ा जाना निश्चित है और मुझे मृत्यु-दंड अवश्य दिया जाएगा। यह सब सोचकर वह हरि शर्मा के कमरे के द्वार पर कान लगाकर खड़ी हो गई। हरि शर्मा कुछ बड़बड़ा रहा था, जिसे सुनकर वह डर गई।

हरि शर्मा अपने बिस्तर पर पड़ा-पड़ा अपने आपको कोस रहा था। उसे रह-रहकर इस बात का पछतावा हो रहा था कि उसने स्थूलदत्त से इतना बड़ा झूठ क्यों बोला कि वह ज्योतिषी है। दुखी होकर वह झूठ बोलने वाली अपनी जीभ को कोसते हुए बड़बड़ाने लगा, ''अरी दुराचारिणी जिह्वा (जीभ)! खाने-पीने के लालच में तूने यह क्या दुष्कर्म कर डाला? अब तो तुझे इस दुष्कर्म का दंड भुगतना ही पड़ेगा।''

दासी जिह्वा ने जब यह सुना, तो वह डर गई और सोचने लगी कि इस ज्योतिषी ने तो मुझे पहचान लिया है! अब मेरी मृत्यु निश्चित है। वह सोचने लगी कि अब किया क्या जाए। कुछ क्षण सोचने के बाद, वह कमरे के भीतर गई और बड़ी युक्ति से हरि शर्मा के पास पहुंचकर उसके पैरों में गिर गई और गिड़गिड़ाने लगी, ''हे ज्ञानी, मैं वही जिह्वा हूं, जिसके दुष्कर्म को आपने पहचान लिया है। मैं अपना अपराध स्वीकार करती हूं। मैंने राजा के आभूषण चुराकर इसी महल के पीछे अनार के पेड़ के नीचे जमीन में गाड़ दिए हैं। अब आप मेरी रक्षा कीजिए। जो थोड़ा-बहुत सोना मेरे पास है, वह भी मैं आपको दे दूंगी। कृपया मुझे मृत्यु-दंड से बचाइए।''

यह सुनकर हरि शर्मा मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुआ और ईश्वर को धन्यवाद देने लगा। किंतु, प्रकट रूप में वह बनावटी गुस्सा दिखाते हुए अकड़कर बोला, ''भाग दुराचारिणी, दासी जिह्वा! मैं भूत, वर्तमान और भविष्यत सबका ज्ञाता हूं। तुझे अवश्य ही दंड मिलना चाहिए।''

दासी ने उसके पैर पकड़ लिए और बोली, ''कृपया मेरी रक्षा कीजिए। मैं वचन देती हूं कि अब कभी चोरी नहीं करूंगी। मैं आपकी शरण में आई हूं। अतः मुझे बचा लीजिए।'' मुझ पर दया कीजिए!''

हरि शर्मा कुछ नर्म पड़ता हुआ बोला, ''ठीक है, यदि तू अपने पास का सारा सोना मुझे दे देगी, तो मैं तेरा भेद नहीं खोलूंगा। शरण में आई हुई नारी को बचाने का मैं पूरा प्रयास करूंगा।''

दासी ने हरि शर्मा के कहने के मुताबिक अपने पास का सोना उसे दे दिया और चुपचाप वहां से चली गई।

दासी के चले जाने के बाद हरि शर्मा अपने भाग्य को सराहते हुए सोचने लगा कि भाग्य अनुकूल होने से असंभव काम भी आसानी से संभव हो जाता है। कितना अनर्थ होने वाला था, किंतु भाग्य अनुकूल होने की वजह से मेरा काम बन ही गया! मैं तो अपनी जिह्वा (जीभ) को ही कोस रहा था कि वह चोर दासी जिह्वा अपने आप मेरे सामने आ गई। छिपे हुए पापी पकड़े जाने के भय से अपने आप सामने आ जाते हैं। यह सोचते-सोचते ही रात बीत गई।

सुबह होने पर हरि शर्मा राजा के पास पहुंचा और बोला, ''महाराज, मुझे आपके चुराए हुए आभूषणों का पता लग गया है।''

''कहां हैं वे आभूषण!'' राजा आश्चर्य से बोला।

''आप मेरे साथ चलिए।'' हरि शर्मा ने कहा और राजा को महल के पीछे अनार के पेड़ के पास

ले गया। उसने जमीन खोदकर सारे आभूषण निकालकर राजा को दे दिए और बोला, ''चोर इसमें से थोड़ा-सा सोना लेकर भाग गया है।''

आभूषण देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसके ज्योतिष-ज्ञान की प्रशंसा करता हुआ उसे अपने साथ महल में ले गया।

रानी ने अपने आभूषण देखे, तो बड़ी प्रसन्न हुई। उसने राजा से कहा, ''आप इन ज्योतिषी जी का सम्मान कीजिए और इन्हें कोई पुरस्कार भी दीजिए। इन्होंने हमारा इतना बड़ा नुकसान होने से बचाया है।''

राजा हरि शर्मा को अपने दरबार में ले गया। वहां उसने अपने मंत्री को बुलाकर कहा, ''यह व्यक्ति बहुत बड़ा ज्योतिषी है। इसने हमारे सारे आभूषण हमें वापस दिला दिए हैं। हम इसे इनाम में कुछ गांव देना चाहते हैं।''

राजा की बात सुनकर मंत्री राजा के कान में बोला, ''महाराज, मुझे नहीं लगता कि यह कोई इतना बड़ा ज्योतिषी होगा। यह अवश्य ही चोरों से मिला हुआ है। इसे इनाम देने से पहले आप इसके ज्ञान की और परीक्षा ले लीजिए। मुझे तो यह कोई धूर्त मालूम देता है।''

''यह कैसे हो सकता है? इसने अपने ज्योतिष-ज्ञान के बल पर ही हमारे आभूषणों का पता लगाया है। इस पर संदेह करना उचित नहीं है।'' राजा बोला।

''किंतु महाराज, फिर भी परीक्षा लेने में क्या हर्ज है?'' मंत्री ने कहा।

''तुम कहते हो, तो मैं इसकी परीक्षा पुनः लिये लेता हूं,'' राजा ने कहा और मंत्री को आदेश दिया, ''तुम एक घड़ा तुरंत मंगवाओ!''

राजा के आदेश पर घड़ा आ गया। राजा ने चुपचाप उसमें एक मेंढक रखकर घड़े को ढक दिया और हरि शर्मा से बोला, ''हे ब्राह्मण, यदि तुम इस घड़े में रखी हुई वस्तु बता दोगे, तो मैं तुम्हें बहुत-सा इनाम दूंगा।''

यह सुनकर हरि शर्मा चक्कर में पड़ गया। उसे अपना नाश निश्चित लगने लगा। उसे याद आया कि उसके पिता बचपन में उसे 'मंडूक' कहकर पुकारते थे, क्योंकि वह बहुत मूर्ख था। वह अपने आपको कोसता हुआ उसी मंडूक नाम से संबोधित करके बोला, ''अरे मंडूक, तू बहुत असहाय है! ले देख, तेरे लिए यह घड़ा पैदा हो गया!''

हरि शर्मा की बात सुनकर राजा और उसका मंत्री तथा अन्य लोग यही समझे कि उसने घड़े में रखे मेंढक को पहचान लिया है। वे सब बहुत प्रसन्न हुए और उसके ज्ञान की प्रशंसा करने लगे। राजा भी अब उसे महाज्ञानी समझने लगा। वह अपने मंत्री से बोला, ''देखा तुमने! मैं ठीक कहता था न! यह वास्तव में बहुत बड़ा ज्योतिषी है!''

मंत्री ने भी राजा की बात का समर्थन किया। इसके बाद राजा ने हरि शर्मा को इनाम में बहुत से गांव दे दिए और भाग्य के बल पर मूर्ख हरि शर्मा देखते-ही-देखते बहुत बड़ा आदमी बन गया।

# बोलने वाला पेड़

धर्मबुद्धि और पापबुद्धि नाम के दो मित्र थे । धर्मबुद्धि बहुत भला, धर्म-परायण और सत्यवादी तथा ईमानदार था । किंतु, पापबुद्धि बहुत ही मूर्ख, दुष्ट और धूर्त था । धर्मबुद्धि के पास भगवान का दिया बहुत कुछ था। वह मौज-मजे में जीवन बिता रहा था। वह लोगों से सदा अच्छा व्यवहार करता था और लोग भी उसकी बहुत प्रशंसा करते थे। किंतु, पापबुद्धि दुष्ट होने के कारण लोगों से सदा दुर्व्यवहार करता था। लोग भी उसे पसंद नहीं करते थे और सदा उसकी निन्दा करते थे। वह बहुत मूर्ख भी था। अपनी मूर्खता और दुर्व्यवहार के कारण वह बहुत दरिद्र भी था और बहुत मुश्किल से अपना गुजारा कर पाता था। धर्मबुद्धि को उसकी इस दशा पर बहुत दया आती थी। वह उसे अक्सर समझाया भी करता था। किंतु, पापबुद्धि उसकी एक भी बात नहीं मानता था।

जब पापबुद्धि अपनी गरीबी से बहुत तंग आ गया, तो उसने एक दिन मन में सोचा कि मैं तो मूर्ख और दरिद्र हूं और इसी वजह से भगवान ने मुझे सजा दी हुई है। धर्मबुद्धि बहुत नेक है, इसलिए भगवान भी इससे प्रसन्न है। अब मुझे अपनी दरिद्रता दूर करने के लिए धर्मबुद्धि का सहारा लेना चाहिए। अतः मैं धर्मबुद्धि को बहला-फुसलाकर परदेश ले जाऊंगा और इसके सहारे से खूब धन कमाऊंगा। और, जब बहुत सारा धन इकट्ठा हो जाएगा तब इसे भी ठगकर मैं बहुत मालामाल हो जाऊंगा और मेरा पूरा जीवन सुख-चैन से कटेगा।

ऐसा सोचकर वह एक दिन धर्मबुद्धि के पास गया और बोला— "मित्र धर्मबुद्धि, तुमने अपने बुढ़ापे के बारे में क्या सोचा है? यह तो तय है कि बुढ़ापा हम दोनों को आएगा ही और बुढ़ापे में अधिक काम नहीं हो पाता। अतः बुढ़ापे के लिए अभी से ही धन संग्रह कर लेना चाहिए, ताकि आखिरी दिन चैन से गुजर सकें। और, फिर जब हम बूढ़े होंगे, तब हमारे बच्चे हमसे हमारे अनुभव जानना चाहेंगे। इसलिए मेरी सलाह है कि हम दोनों परदेश जाकर खूब धन कमाएं और दूर-दूर के स्थान देखकर आएं, ताकि हम अपने बच्चों को वहां के सब अनुभव बता सकें।"

धर्मबुद्धि को पापबुद्धि का यह विचार बहुत पसंद आया। वह बोला— "तुम ठीक कहते हो। मैं तुम्हारे साथ चलूंगा और हम दोनों मिलकर परदेश से खूब धन कमाकर लाएंगे!"

धर्मबुद्धि और पापबुद्धि दोनों ने अपने-अपने माता-पिता से आज्ञा ली और एक दिन शुभ मुहूर्त देखकर परदेश के लिए रवाना हो गए।

परदेश जाकर पापबुद्धि और धर्मबुद्धि ने बहुत धन कमाया। इस धन में धर्मबुद्धि का हिस्सा अधिक था, क्योंकि वह बहुत मेहनत करता था और पापबुद्धि आलसी होने की वजह से बहुत कम काम करता था। किंतु, धर्मबुद्धि भला आदमी था, इसलिए वह आधा-आधा हिस्सा बांट लेता था।

परदेश में जब कई वर्ष गुजर गए और उनके पास बहुत-सा धन भी इकट्ठा हो गया, तो पापबुद्धि ने सोचा कि यह सारा धन मुझे हड़प लेना चाहिए। यदि मैं धर्मबुद्धि का धन भी किसी तरह रख लूं, तो मैं मौज-मजे से अपने दिन गुजारूंगा।

यह सोचकर वह एक दिन धर्मबुद्धि से बोला– "बंधुवर! अब हम लोगों ने बहुत धन एकत्रित कर लिया है। यह हमारे लिए पर्याप्त रहेगा। हमें अपने घर से चले बहुत समय भी हो गया है। मुझे अपने घर की याद सताने लगी है। सम्भवतः तुम्हें भी अपने घर की याद आती होगी। अतः अब हमें अपने घर लौट जाना चाहिए।"

धर्मबुद्धि बोला– "तुम ठीक कहते हो, मित्र! हमने जो धन एकत्र कर लिया है, वह हमारे पूरे जीवन के लिए काफी है। और अधिक धन कमाकर हम क्या करेंगे? हमें आज ही अपने घर के लिए रवाना हो जाना चाहिए।"

वे दोनों घर लौटने की तैयारी करने लगे। सारा धन एकत्र करके वे अपने घर के लिए रवाना हो गए।

जब वे अपने नगर के निकट एक जंगल में पहुंचे, तो पापबुद्धि के मन में आया कि घर पहुंचने से पहले ही धर्मबुद्धि का सारा धन हड़प लेना चाहिए। वास्तव में वह सारे रास्ते यही सोचता आ रहा था कि धर्मबुद्धि का धन हड़पने का क्या उपाय हो? नगर के निकट के जंगल में पहुंचते ही उसे एक तरकीब सूझी। वह मन ही मन अपनी तरकीब पर प्रसन्न हुआ और धर्मबुद्धि से बोला– "बंधुवर, यह सारा धन घर पर ले जाना ठीक नहीं है, क्योंकि जब हमारे बंधु-बांधव हमारे पास यह धन देखेंगे, तो वे भी हमसे धन मांगने लगेंगे। अपनी मेहनत की कमाई को कुटुम्बियों पर लुटाना उचित नहीं है।"

धर्मबुद्धि बोला– "बात तो तुम ठीक कहते हो, मित्र! किंतु यह धन घर ले जाने के बजाय हम कहां रखेंगे? क्या तुमने इस बारे में कुछ सोचा है?"

"मैंने सब कुछ सोच लिया है। इसके बाद ही मैंने तुमसे अपनी बात कही है। हम ऐसा करते हैं कि यहां जमीन में एक गड्ढा खोदकर अधिक से अधिक धन एक घड़े में रखकर उस गड्ढे में छिपा देंगे और सिर्फ थोड़ा-सा धन अपने साथ लेकर घर चले जाएंगे। जब कभी आवश्यकता होगी, तब हम दोनों साथ-साथ आकर आवश्यकतानुसार धन यहां से ले जाते रहेंगे।" पापबुद्धि ने धर्मबुद्धि को समझाया।

"तुमने बहुत अच्छा उपाय सोचा है। हम ऐसा ही करते हैं।" धर्मबुद्धि ने कहा।

उन दोनों ने मिलकर वहां एक गड्ढा खोदा और सारा धन एक घड़े में रखकर गड्ढे को बंद कर दिया। इसके बाद वे दोनों अपने-अपने घर चले गए।

धर्मबुद्धि जो थोड़ा-बहुत धन अपने साथ घर पर लाया था, उससे नया काम-धंधा शुरू करके उस धन को और बढ़ा लिया, किंतु पापबुद्धि ने अपना धन खा-पीकर बराबर कर दिया। जब उसके पास धन का अभाव होने लगा, तो एक दिन वह जंगल में गया और रात में गड्ढा खोदकर सारा धन निकाल लाया और गड्ढे को मिट्टी से भर आया।

धर्मबुद्धि को धन की आवश्यकता नहीं पड़ी थी। अतः वह जंगल नहीं जा सका था। उधर पापबुद्धि सोचने लगा कि जब धर्मबुद्धि को धन की आवश्यकता पड़ेगी, तो उसका सारा भेद खुल जाएगा। यह सोचकर वह परेशान हो उठा। एक दिन वह पूरी रात करवटें बदलता रहा और भेद न

खुलने देने का उपाय सोचता रहा। सोचते-सोचते उसके मन में एक बात आई कि किसी न किसी तरह वह धर्मबुद्धि पर ही धन को चुराने का आरोप लगा देगा।

वह अगले ही दिन धर्मबुद्धि के पास पहुंचा और बोला-- "बंधुवर, तुम तो जानते ही हो कि मेरा परिवार बहुत बड़ा है। मैं जो भी धन अपने घर ले गया था, वह सारा खर्च हो चुका है और अब मैं और मेरा परिवार धन की कमी से कष्ट पा रहा है। यदि तुम सहमत हो, तो हम लोग जंगल चलते हैं और वहां से कुछ और धन निकाल लाते हैं। क्योंकि धन में हम दोनों का बराबर का हिस्सा है, अतः जितना धन मैं निकालूं उतना ही तुम भी निकाल लेना।"

धर्मबुद्धि बोला– "मित्र, मुझे धन की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम्हें जितना धन चाहिए, वहां से ले लेना और मुझे बता देना।"

पापबुद्धि बोला– "नहीं मित्र, धन पर तुम्हारा बराबर का अधिकार है। जितना धन मैं लूंगा, उतना ही तुम्हें भी लेना होगा। मैं इस मामले में बहुत ईमानदारी बरतना चाहता हूं।"

"ठीक है, तुम जितना अपने लिए लाओ, उतना ही मेरे लिए भी लेते आना।" धर्मबुद्धि ने कहा।

"नहीं मित्र, यह उचित नहीं होगा। हम दोनों को साथ ही चलना चाहिए, ताकि बाद में कोई घपला नहीं हो।" पापबुद्धि ने आग्रह किया।

"मुझे तुम पर पूरा भरोसा है, मित्र! तुम ले आओ।" धर्मबुद्धि ने कहा। पापबुद्धि ने धर्मबुद्धि की एक न सुनी और उसे आग्रहपूर्वक अपने साथ जंगल ले गया।

जंगल में पहुंचकर पापबुद्धि ने धर्मबुद्धि से कहा-- "इस गड्ढे को खोद लो। फिर उसके बाद हम अपनी आवश्यकतानुसार धन ले लेंगे।"

धर्मबुद्धि ने पापबुद्धि का कहा मानकर गड्ढा खोदना शुरू कर दिया। जब धर्मबुद्धि ने घड़ा देखा, तो अचम्भे में पड़ गया। घड़ा खाली था। उसको अचम्भे में पड़ा देखकर पापबुद्धि बोला– "क्या हुआ, मित्रवर!"

धर्मबुद्धि हिचकिचाकर बोला– "यह घड़ा तो खाली है!"

"क्या कहा? घड़ा खाली है! यह कैसे हो सकता है?" पापबुद्धि बोला।

"तुम स्वयं देख लो!" धर्मबुद्धि ने कहा।

जब पापबुद्धि ने खाली घड़े को देखा, तो सिर पीट-पीटकर रोना शुरू कर दिया और बोला-- "अरे धर्मबुद्धि! मैं तो तुझे बहुत नेक और ईमानदार समझता था, परंतु तू तो बहुत दुष्ट निकला! तू भले आदमी के रूप में परले दर्जे का पाखंडी है। तूने ही यह सारा धन चुरा लिया है!"

यह सुनकर धर्मबुद्धि चकित होकर पापबुद्धि को देखने लगा और बोला-- "मित्र, मेरा विश्वास करो। मैंने यह धन नहीं चुराया है!"

"मैं तेरी एक नहीं सुनूंगा! तू झूठा और मक्कार है। तूने ही यह धन चुराया है। भला किसी और को इस धन के बारे में क्या पता है? तूने ही धन निकालकर इस गड्ढे को मिट्टी से भर दिया है।"

पापबुद्धि जोर-जोर से बोलने लगा,''अब भला इसी में है कि तू मेरा आधा भाग मुझे दे दे, अन्यथा मैं न्यायालय में जाकर सारी बात बता दूंगा!''

पापबुद्धि की बात सुनकर धर्मबुद्धि को भी क्रोध आ गया और वह बोला– ''अरे दुष्ट, ऐसा मत कह! मैं तो धर्मबुद्धि हूं। मैं चोरी का काम भला क्यों करने लगा?''

''तू पूरा दुष्ट और पाखंडी है! तू धर्मबुद्धि नाम रखकर सारे पाप कर्म करता है!'' पापबुद्धि जोर से चीखा।

धर्मबुद्धि बोला- ''पापी, तू दुष्टात्मा है। तूने सारा धन निकालने के बाद यह सब ढोंग रचाया है। तूने मित्रघात किया है। तू चोर है।''

इस प्रकार वे दोनों झगड़ते हुए न्यायालय में पहुंच गए और न्यायाधिकारी के सामने एक-दूसरे को दोष देने लगे।

न्यायाधिकारी ने दोनों की बातों को ध्यानपूर्वक सुना और बोला– ''तुम दोनों शपथ लेकर अपने-अपने बयान दो। इसके बाद मैं न्याय करूंगा।''

यह सुनकर पापबुद्धि बोला–''श्रीमन! यह न्याय नहीं है। गवाह के बिना न्याय करना उचित नहीं होता। इस घटना में वन-देवता मेरा गवाह है। वही हम दोनों में से एक को चोर या ईमानदार बता सकता है।''

न्यायाधिकारी को पापबुद्धि की यह बात ठीक लगी। वह बोला– "तुम ठीक कहते हो! हमारी भी इस विषय में बड़ी जिज्ञासा है। कल तुम दोनों ही मेरे साथ उस वन में चलना।''

न्यायाधिकारी का आदेश सुनकर वे दोनों अपने-अपने घर लौट गए। पापबुद्धि रास्ते-भर गवाह जुटाने का उपाय सोचता रहा। जब वह घर पहुंचा, तो एक उपाय तुरंत उसके मन में आया। वह अपने पिता से बोला– ''पिताजी, धर्मबुद्धि ने मेरा बहुत सारा धन चुरा लिया है। अब वह आपकी गवाही से ही वापस मिल सकता है, अन्यथा हम सबके प्राण संकट में पड़ जाएंगे। अतः आपको न्यायाधिकारी के सामने मेरे पक्ष में गवाही देनी होगी।''

''लेकिन मुझे तो तुम्हारे धन के बारे में कुछ भी पता नहीं है! मैंने धर्मबुद्धि को धन चुराते हुए तो देखा नहीं, मैं कैसे गवाही दे सकूंगा?'' पापबुद्धि के पिता ने कहा।''

''पिताजी, यदि आप गवाही नहीं देंगे, तो हम सब भूखे मर जाएंगे। घर के छोटे-छोटे बच्चे जब भूखे मरेंगे, तो क्या आपको दुख नहीं होगा?'' पापबुद्धि की इस बात से उसके पिता का कलेजा कांप गया।

''अब और आगे कुछ मत कहो, बेटा!'' पिता बोले– "तुम मुझे जल्दी से जल्दी वह बात बता दो जिसके कहने से तुम्हारा धन वापस मिल जाए।''

पापबुद्धि बोला– "पिताजी, उस वन में एक कीकर का पेड़ है। उस पेड़ में एक कोटर है। आप उसमें अभी जाकर घुस जाइए। कल सुबह जब मैं आपसे कुछ पूछूं, तो आप कह देना कि धर्मबुद्धि चोर है।"

पिता पापबुद्धि के कहने के अनुसार कीकर के पेड़ के कोटर में बैठने के लिए वन चले गए।

अगले दिन पापबुद्धि और धर्मबुद्धि न्यायाधिकारी के पास गए और उसे लेकर जंगल में कीकर के पेड़ के पास पहुंच गए। पापबुद्धि ने जोर से कहा– ''हे वन-देवता! आप साक्षी हैं, आप न्यायाधिकारी के सामने बता दीजिए कि हम दोनों में से चोर कौन है!''

यह सुनकर पापबुद्धि के पिता, जो कीकर के पेड़ के कोटर में पहले से ही बैठे हुए थे, बोले– ''यह धन धर्मबुद्धि ने चुराया है, अतः वही चोर है !''

जैसे ही यह सुनकर न्यायाधिकारी चोरी के जुर्म में धर्मबुद्धि को पकड़ने को उद्यत हुआ, वैसे ही धर्मबुद्धि बोला– ''आप कुछ प्रतीक्षा कीजिए!''

धर्मबुद्धि पेड़ से निकली आवाज सुनकर हैरत में पड़ गया था। उसने पेड़ को पहली बार बोलते हुए सुना था। उसने मन ही मन सोचा कि दाल में कुछ काला जरूर है। ऐसा कैसे हो सकता है कि कोई पेड़ एकाएक बोलने लगे। यदि पेड़ में वन-देवता भी बैठे हैं, तो वह झूठ कैसे बोल सकते हैं? वन-देवता तो धर्म के अवतार होते हैं। वह भला क्यों झूठ बोलने लगे? अवश्य ही पापबुद्धि ने कोई षड्यंत्र रचा है।

तभी न्यायाधिकारी ने धर्मबुद्धि का हाथ पकड़कर कहा– ''अब तो वन-देवता ने भी तुम्हें चोर बता दिया है, अतः तुम्हें इस चोरी का दंड भुगतना ही होगा। तुम मेरे साथ चलो!''

धर्मबुद्धि बोला– ''लेकिन इस बात का क्या प्रमाण है कि वन-देवता ने मुझे चोर ठहराया है!''

''तुमने सुना नहीं, वन-देवता ने अभी-अभी क्या कहा था!'' न्यायाधिकारी ने कहा।

''किंतु, क्या आपको पूर्ण विश्वास है कि वह वन-देवता की ही आवाज थी?'' धर्मबुद्धि ने प्रश्न किया।

''क्या मतलब!'' न्यायाधिकारी ने अचरज से कहा।

''श्रीमन! आपने ध्यान से सुना हो, तो यह अनुभव किया होगा कि वह आवाज इस पेड़ से आ रही थी। क्या वन-देवता इस पेड़ में रहते हैं?'' धर्मबुद्धि की बात सुनकर न्यायाधिकारी भी आशंकित हो उठा। पापबुद्धि मन ही मन भयभीत हो गया कि कहीं धर्मबुद्धि ने उसका भेद तो नहीं जान लिया।

''तुम कहना क्या चाहते हो?'' न्यायाधिकारी ने कहा।

''श्रीमन! मैं जो कुछ कहना चाहता हूं, वह आपके सामने अपने आप ही प्रकट हो जाएगा।'' धर्मबुद्धि ने कहा और आसपास से घास-फूस इकट्ठा करके कोटर के चारों ओर फैलाकर उसमें आग लगा दी।

धीरे-धीरे आग तेजी से जलने लगी तो पापबुद्धि के पिता झुलसने लगे और भयंकर

चीत्कार करते हुए कोटर से बाहर निकल पड़े। न्यायाधिकारी ने जब यह देखा, तो आश्चर्यचकित रह गया और बोला– ''अरे, यह क्या!''

''श्रीमन! मैं यही कहना चाहता था। मैंने आज तक किसी पेड़ को बोलते हुए नहीं सुना है। आपने स्वयं देख लिया कि यही व्यक्ति इस पेड़ में घुसकर बोल रहा था। यह व्यक्ति कोई और नहीं, बल्कि पापबुद्धि के पिता हैं। यह सारी करतूत पापबुद्धि की है। वास्तव में सारा धन इसी ने चुराया है और मुझ पर झूठा आरोप लगाकर अपने पिता से झूठी गवाही दिलाने के लिए ही इसने यह षड्यंत्र रचा था।'' धर्मबुद्धि ने बड़े दृढ़ स्वर में कहा।

इस प्रकार पापबुद्धि का सारा भेद खुल गया और उसे अपने दुष्कर्म का दंड भोगना पड़ा। न्यायाधिकारी ने धर्मबुद्धि से क्षमा मांगी और बोला– ''आप धन्य हैं। मैं यह सोच भी नहीं पाया कि भला पेड़ भी कहीं बोलता है!''

# कंजूस का हवाई किला

स्वभावकृपण भीख मांग कर अपना गुजारा करता था। किंतु, वह बहुत कंजूस भी था। उसे भीख में जो-कुछ भी मिलता था, वह उसमें से थोड़ा-सा खाता था और शेष बचाकर रख लेता था। कंजूस होने की वजह से उसका नाम भी स्वभावकृपण पड़ गया था।

उन दिनों भीख में सत्तू दिए जाते थे। भीख में मिले हुए सत्तू में से थोड़े-थोड़े सत्तू बचाकर वह एक घड़े में भरता रहता था। उस घड़े को एक खूंटी पर लटकाकर वह पास में ही खाट बिछा लेता था और खाट पर लेटकर उस घड़े को देखता रहता था। एक दिन उसने देखा कि वह घड़ा सत्तू से भर गया है। वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसे लगा कि वह बहुत बड़ा धनवान बन गया है, क्योंकि इतने सारे सत्तू की कीमत बहुत अधिक होती है।

वह अकसर नींद से जागकर सत्तू से भरे घड़े को देख लेता और तरह-तरह की कल्पनाएं करता रहता। एक दिन सोचते-सोचते उसे आशंका हुई कि उसका यह सत्तू से भरा घड़ा कहीं कोई चोर उठाकर न ले जाए! यह सोचते ही वह मन-ही-मन कांप उठा। अब वह अक्सर घड़े को अपने पास ही रखने लगा। सोते-जागते वह घड़ा उसके पास ही रहता। मन में शंका होने की वजह से रात को अकसर उसकी नींद खुल जाती और वह चौंककर अपने घड़े को टटोलने लगता। घड़े को सुरक्षित देखकर ही वह आश्वस्त हो पाता था। घड़ा उसे अपनी जान से भी अधिक प्रिय लगने लगा था और वह हर समय उसकी ही निगरानी किया करता था।

एक दिन वह सोचने लगा कि इतने सारे सत्तू का आखिर क्या किया जाए! क्या बाजार में बेचकर धन ले लिया जाए! पर, तभी उसके मन में विचार आया...नहीं, नहीं! यदि अभी से सत्तू को बेच दिया, तो बहुत कम पैसे मिलेंगे! तब...क्या किया जाए? ठीक है...जब अकाल पड़ेगा तब तो यह सौ रुपए में बिकेगा। तभी बेचना ठीक रहेगा!...तब तो मैं मालामाल हो जाऊंगा!

सत्तू को अकाल के समय में बेचने की कल्पना से वह गद्गद् हो उठा। इस कल्पना ने उसके मन में और कई सुखद कल्पनाएं भर दीं। अब वह हवाई किले बनाने लगा।

एक दिन वह इसी तरह हवाई किले बना रहा था। वह सोचने लगा कि जब अकाल पड़ेगा तो मैं इस सत्तू को कम से कम सौ रुपए में बेचूंगा! तब उन सौ रुपयों में से दो बकरियां खरीदूंगा। जब बकरियां बच्चे देंगी, तो मैं उन बच्चों को बेचकर एक गाय खरीद लूंगा और उसका दूध बेच-बेचकर और अधिक धन कमाऊंगा। जब और धन इकट्ठा हो जाएगा, तो मैं गाय को बेच दूंगा और उसे बेचकर मुझे जितना धन मिलेगा, उसमें अपने पास

का धन मिलाकर मैं एक भैंस खरीद लूंगा। भैंस का दूध बेच-बेचकर मैं और अधिक धन कमाऊंगा। जब मेरे पास बहुत-सा धन हो जाएगा, तो मैं उस भैंस को भी बेच दूंगा और उस धन से एक घोड़ी खरीद लूंगा। जब घोड़ी के बच्चे होंगे, तो मैं उन बच्चों को बेचकर उस सारे धन का सोना खरीद लूंगा। उस सोने से मैं चार कमरों वाला एक बहुत बड़ा घर बनवाऊंगा। जब मेरे पास इतना बड़ा घर हो जाएगा, तो फिर कोई ब्राह्मण अपनी कन्या का विवाह मेरे साथ कर देगा। मैं अपनी उस पत्नी को बहुत प्यार करूंगा और हम दोनों आनंदपूर्वक रहा करेंगे। इसके बाद हमारे एक बेटा होगा और मैं उसका नाम सोम शर्मा रखूंगा।

बेटे की कल्पना करके वह रोमांचित हो उठा। उसने दो-तीन बार अपने उस काल्पनिक बेटे को पुकारा-- ''सोम शर्मा! ओ, सोम शर्मा!'' वह खुशी से पागल हो उठा और फिर और अधिक कल्पनाएं करने लगा—जब मैं उसे आवाज दूंगा, तो वह घुटने के बल चलकर मेरे पास दौड़ा चला आया करेगा। ऐसे में मैं भी किसी दिन घुड़साल की तरफ पीठ करके एक पुस्तक लेकर बैठ जाऊंगा। इसी बीच सोम शर्मा भी मुझे पढ़ता हुआ देखकर अपनी मां की गोद से मेरे पास आ जाएगा। मैं अपनी पत्नी से चिल्लाकर कहूंगा-- ''सुन री, इसको पकड़ ले, यह मुझे पढ़ने नहीं दे रहा है!''

किंतु, वह अपने घर के काम में लगी होगी और मेरी बात नहीं सुनेगी। तब मुझे बहुत जोर से गुस्सा आएगा और मैं उस गुस्से में अपने स्थान से उठकर अपनी पत्नी के पास जाऊंगा और उसे जोर से एक लात मारूंगा।

यह सोचते-सोचते स्वभावकृपण ने लात मारी जो सत्तू से भरे घड़े पर लगी और घड़ा टूट गया। स्वभावकृपण ने जब यह देखा, तो उसे बहुत दुख हुआ। सत्तू के घड़े के साथ-साथ उसका हवाई किला भी टूटकर बिखर गया।

# चुहिया का ब्याह

सालंकायन नाम के एक ऋषि एक बार स्नान करने गंगा नदी पर गए। गंगा-स्नान करने के बाद वह सूर्य की उपासना करने लगे। उपासना से निवृत्त होकर जैसे ही वह अपने आश्रम की ओर चलने लगे कि उन्होंने देखा कि एक बाज एक चुहिया को अपने पंजों में दबाकर लिए जा रहा है। यह देखकर उनका हृदय करुणा से भर गया। उनके मन में यह विचार आया कि इस चुहिया को तुरंत छुड़वा देना चाहिए। उन्होंने बाज को आवाज लगाई– "इसे छोड़ दे!"

बाज ने ऋषि की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह चुहिया को दबाए हुए चलता चला गया। ऋषि ने सोचा कि यह बाज चुहिया को ऐसे ही नहीं छोड़ेगा। उन्होंने पत्थर का एक टुकड़ा उठाया और बाज की ओर फेंक दिया। पत्थर का टुकड़ा लगते ही बाज व्याकुल होकर चीखने लगा और चुहिया उसके पंजों से निकलकर जमीन पर आ गिरी। वह डरी हुई थी और किसी तरह घिसटकर ऋषि के चरणों में आ पड़ी और कहने लगी– "महात्माजी, मेरी रक्षा कीजिए! यह बाज मुझे खा जाएगा!"

ऋषि ने चुहिया को गोद में उठा लिया और स्नेह से उस पर हाथ फेरते हुए बोले– "तू निश्चिन्त रह! यह बाज तेरा कुछ नहीं बिगाड़ पाएगा।"

बाज को होश आया, तो वह तपस्वी से कहने लगा– "तपस्वीजी, आपने मुझे पत्थर से मारकर ठीक नहीं किया। क्या आप धर्म से नहीं डरते? इस चुहिया को आप मुझे दे दीजिए। अन्यथा आपको बहुत पाप लगेगा!"

बाज की बात सुनकर ऋषि ने कहा– "अरे नीच पक्षी! मैंने क्या अपराध किया है, जो मुझे पाप लगेगा?"

"आपने मुझे पत्थर से मारा है और मुझसे यह चुहिया छीन ली है!"

ऋषि बोले– "क्या किसी के प्राणों की रक्षा करना अधर्म है? इसकी रक्षा करने के लिए ही तो मैंने तुझे पत्थर से मारा है। यदि मैं तुझे नहीं मारता, तो तू इस चुहिया को नहीं छोड़ता। तेरे जैसे दुष्ट को तो दंड मिलना ही चाहिए। और फिर भी तू मेरे कृत्य को अधर्म बता रहा है!"

बाज बोला– "हे तपस्वी, आप धर्म के सूक्ष्म तत्त्व को नहीं जानते। विधाता ने सृष्टि की रचना करते समय संसार के सभी प्राणियों के लिए आहार की व्यवस्था की है। जिस प्रकार भगवान ने आपके लिए अन्न की व्यवस्था की है, उसी प्रकार मेरे लिए चुहिया आदि जीवों की

व्यवस्था की है। मुझे तो अपना आहार चाहिए। इसमें मेरा क्या दोष है? आप मुझे व्यर्थ ही दुष्ट बता रहे हैं!"

यह सुनकर ऋषि हंसे और बोले– "मूर्ख पक्षी, यह धर्म तो सतयुग में था। अब तो कलयुग है। यहां तो सभी पापी हैं। तू क्यों बकवास कर रहा है? तू चुपचाप चला जा, नहीं तो मैं तुझे शाप दे दूंगा।"

यह सुनकर बाज चुपचाप चला गया।

बाज के चले जाने के बाद चुहिया ने ऋषि से प्रार्थना की– "महात्माजी, आप मुझे अपनी शरण में ले लीजिए, अन्यथा कोई भी दुष्ट पक्षी मुझे मार डालेगा। मैं आपके आश्रम में रहकर आपके दिए हुए आहार से ही अपना पेट भर लूंगी।"

चुहिया की बात सुनकर ऋषि को दया आ गई। वह उसे अपने आश्रम में ले जाने के लिए तैयार हो गए। तभी उनके मन में विचार आया कि मैं इस चुहिया को अपने आश्रम तक कैसे ले जाऊं? यदि मैं इसे हाथ पर रखकर ले जाऊंगा, तो दुनिया मुझ पर हंसेगी। अतः मैं इसे पहले कन्या बना दूं और उसके बाद इसे अपने आश्रम में ले जाऊंगा। यह सोचकर ऋषि ने कुछ मंत्र पढ़े और उस चुहिया को कन्या बना दिया।

चुहिया कन्या का रूप धारण करके बहुत सुंदर लग रही थी और मन ही मन प्रसन्न हो रही थी। ऋषि ने उसकी ओर देखा, तो कन्या को देखकर मुग्ध हो उठे और उससे बोले-- "चलो, अब आश्रम चलते हैं।"

कन्या को लेकर जैसे ही ऋषि अपने आश्रम में पहुंचे, तो उनकी पत्नी को बहुत आश्चर्य हुआ। कन्या की ओर देखती हुई वह बोली– "भगवन्, इस कन्या को कहां से ले आए? कौन है यह कन्या?"

ऋषि ने अपनी पत्नी को पूरा किस्सा बताया और बोले– "यह चुहिया बाज से बुरी तरह डर गई थी, और इसने मुझसे शरण मांगी। मैंने पहले इसे कन्या बनाया और उसके बाद यहां ले आया हूं। तुम इसकी रक्षा करना। मैं इसे पुनः चुहिया बना दूंगा।"

ऋषि की पत्नी यह सुनकर कुछ बोली नहीं। ऋषि ने समझा कि उनका प्रस्ताव शायद उसे पसंद नहीं आया। वह बोले– "यदि तुम्हें कन्या का यहां लाना उचित न लगा हो, तो मैं इसे चुहिया बनाकर पुनः जंगल में छोड़ आऊंगा।"

"नहीं, नहीं!" ऋषि की पत्नी बोली– "ऐसा मत कीजिए! आप तो विद्वान हैं, इसलिए जानते ही होंगे कि शास्त्रों में पांच प्रकार के पिता बताए गए हैं–जन्म देने वाला, उपनयन कराने वाला, विद्या-दान करने वाला, अन्न देने वाला और भय दूर करने वाला। आपने इसे प्राण दिए हैं, अतः आप इसके पिता-तुल्य हैं और इस नाते यह हमारी संतान है। वैसे भी हमारे कोई संतान नहीं है। इसलिए यह मेरी बेटी की तरह यहीं आश्रम में ही रहेगी।"

पत्नी की बातें सुनकर ऋषि प्रसन्न हो गए। उन्होंने कन्या को अपने आश्रम में ही रख लिया और उसका लालन-पालन करने लगे। वह कन्या भी अपने माता-पिता की तरह उनकी सेवा करने लगी।

चुहिया से बनी वह कन्या धीरे-धीरे युवती हो गई। उसकी युवावस्था को देखकर ऋषि के मन में यह विचार आया कि अब इस कन्या का विवाह शीघ्रातिशीघ्र कर देना चाहिए। यह सोचकर वह एक दिन अपनी पत्नी से बोले– ''प्रिये, यह कन्या अब युवावस्था को प्राप्त हो गई है। अतः अब इसका हमारे घर में रहना ठीक नहीं है। अब हमें शीघ्र ही किसी अच्छे वर की तलाश करके इसका विवाह कर देना चाहिए।''

ऋषि की पत्नी ने सहमति जताते हुए कहा– ''*ठीक है, ऐसा ही कीजिए।*''

ऋषि ने तुरंत ही अच्छे वर की खोज प्रारंभ कर दी। इसके लिए उन्होंने सूर्य को बुलवाया। सूर्य तत्काल उपस्थित हुए और उनसे पूछा– ''भगवन, मुझे शीघ्र ही बताइए कि मुझे आपने किसलिए बुलाया है?''

ऋषि बोले– ''यदि मेरी यह कन्या तुम्हें पसंद कर ले, तो तुम इससे शीघ्र ही विवाह कर लो।'' यह कहकर ऋषि ने सूर्य को वह कन्या दिखाई।

सूर्य कुछ नहीं बोले। ऋषि ने कन्या से कहा– ''हे पुत्री, यह तीनों लोकों को प्रकाश देने वाले भगवान सूर्य हैं। यदि तुझे यह पसंद हों, तो मैं इनसे तेरा विवाह कर दूंगा।''

कन्या बोली– ''यह तो दहक रहे हैं। यह मुझे पसंद नहीं हैं। यदि इनसे भी श्रेष्ठ कोई प्राणी हो, तो उसे बुलाइए, ताकि मैं उससे विवाह कर सकूं।''

कन्या की बात सुनकर सूर्य को बहुत क्रोध आया। सूर्य ने उस कन्या को पहचान लिया था कि यह तो वास्तव में वही चुहिया है, जिसे ऋषि ने कन्या का रूप दे दिया है। किंतु वह कुछ बोले नहीं। तब ऋषि ने सूर्य से पूछा– ''हे सूर्य, आप ही बताइए कि आपसे श्रेष्ठ कौन-सा प्राणी है?''

सूर्य ने बड़े अनमने भाव से ऋषि से कहा– ''हे ऋषिवर, मुझसे श्रेष्ठ तो बादल ही है। जब बादल मुझे ढक लेता है, तो मझे कोई जानता भी नहीं है।'' यह कहकर सूर्य चले गए।

तब ऋषि ने बादल को बुलाया और उसे दिखाकर कन्या से पूछा– ''पुत्री, यह बादल सूर्य से भी श्रेष्ठ है। क्या तुम्हें यह पसंद है? यदि तुम्हें यह पसंद हो, तो मैं इससे तुम्हारा विवाह कर दूंगा।''

कन्या को बादल भी पसंद नहीं आया। वह नाक-भौं सिकोड़ती हुई बोली- ''पिताजी, मेरे लिए तो इससे भी श्रेष्ठ कोई अन्य अच्छा वर ढूंढकर लाइए। मैं इससे विवाह नहीं कर सकती।''

बादल को कन्या की यह बात बहुत बुरी लगी। किंतु वह कुछ बोला नहीं, तब ऋषि ने बादल से पूछा– "हे बादल, क्या तुम बता सकते हो कि तुमसे भी श्रेष्ठ वर और कौन हो सकता है?"

बादल चिढ़कर बोला– "हे ऋषिवर, मुझसे भी श्रेष्ठ वायु है। वायु के वेग से तो मैं भी दूर-दूर भागता फिरता हूं। उसमें मुझसे कहीं अधिक बल है। वही इस कन्या के योग्य होगा।" यह कहकर बादल भी चला गया।

इसके बाद ऋषि ने वायु को बुलाया और कन्या से पूछा– "हे पुत्री, वायु तो सबसे उत्तम है और बहुत बलशाली भी है। इसके बल के आगे कोई टिक नहीं सकता। यदि तुम सहमत हो जाओ, तो मैं तुम्हारा विवाह वायु के साथ किए देता हूं।"

कन्या बोली– "पिताजी, यह तो ठीक है कि वायु उत्तम और बलशाली है, किंतु यह बलवान होते हुए भी चंचल है! आप इससे भी श्रेष्ठ किसी और को बुलाइए।"

तब वायु स्वयं ही बोला– "हे ऋषिवर, मुझसे भी अधिक बलवान तो पर्वत है और वह इतना बलशाली है कि मुझ जैसे बलशाली को भी रोक लेता है। वह तो चंचल भी नहीं है।" यह कहकर वायु भी चला गया।

इसके बाद ऋषि ने पर्वत को बुलवाया और उसे दिखाते हुए वह कन्या से बोले– "पुत्री, यह पर्वत सर्वगुण-सम्पन्न है, अतः मैं तेरा विवाह इसी के साथ सम्पन्न किए देता हूं।"

यह सुनकर कन्या घबरा गई और बोली– ''पिताजी, यह सर्वगुण-सम्पन्न भले ही हो, किंतु यह बहुत कठोर है। आप मेरा विवाह इससे मत कीजिए। इससे कोई अच्छा वर ढूंढिए।''

यह सुनकर पर्वत को बहुत हंसी आई। उसने भी पहचान लिया था कि यह कन्या वास्तव में चुहिया है। अतः वह बोला– ''हे तपस्वी, यह कन्या सही कह रही है। मुझसे श्रेष्ठ तो चूहा है, जो मुझमें छेद करके मुझे खोखला तक बना देता है। वही इस कन्या के योग्य वर है।''

इसके बाद ऋषि ने एक चूहे को बुलाया और कन्या से पूछा– ''पुत्री, यह मूषकराज हैं, जिनके बल की प्रशंसा पर्वत देवता ने भी की थी। यदि यह मूषकराज तुझे पसंद हों, तो मैं तेरा विवाह इनके साथ किए देता हूं।''

कन्या, जो वास्तव में चुहिया थी, अपनी जाति के प्राणी उस चूहे को देखकर खुशी से रोमांचित हो उठी और बोली– ''ठीक है, पिताजी। आप मुझे इस चूहे को सौंप दीजिए और मुझे फिर से चुहिया बना दीजिए, ताकि मैं अपनी जाति के अनुसार गृहस्थ-धर्म का पालन कर सकूं।''

यह सुनकर ऋषि को बहुत दुख हुआ। उन्होंने मन ही मन सोचा कि आखिर अपनी जाति के संस्कार रंग ले ही आए। उन्होंने कन्या को फिर से चुहिया बना दिया और उस चुहिया का विवाह चूहे से कर दिया।

# टिटहरी के अंडे

एक बार टिटहरी जैसे मामूली पक्षी की विशाल आकार वाले समुद्र से जमकर लड़ाई हुई । और सबसे ज्यादा मजेदार बात यह रही कि उस लड़ाई में जीत टिटहरी की हुई, और समुद्र को क्षमा मांगनी पड़ी। लड़ाई का कारण टिटहरी के अंडे थे, जिन्हें समुद्र ने चुरा लिया था।

उस समुद्र के किनारे बड़ा मनोरम स्थान था। तट पर बहुत चमकीली और नम बालू थी। चारों ओर बहुत सुंदर पेड़ थे, जिन पर तरह-तरह के रंग-बिरंगे फूल और मीठे फल थे। तट पर ही टिटहरी और उसके टिटहरे ने अपना घोंसला बनाया। टिटहरी और टिटहरा तट के उस मनोरम स्थान में आनंदपूर्वक रहते थे। दिन-भर वे मीठे फल खाते और आकाश की सैर करते और रात को घोंसले में आकर सो जाते।

एक बार टिटहरी गर्भवती हुई और प्रसव का समय निकट जानकर वह टिटहरे से बोली— "मेरे प्रसव का समय आ पहुंचा है। अतः शीघ्र ही ऐसे स्थान की खोज करो, जहां कोई परेशानी न हो और मैं आराम से अंडे दे सकूं। वह स्थान शांत और एकांत होना चाहिए और मनोरम भी।"

यह सुनकर टिटहरा कुछ झिझका और बोला— "प्रिये, यह समुद्र का किनारा बहुत ही रमणीय है। ऐसा शांत और मनोरम स्थान और कहां मिलेगा? अतः मेरी राय में तो यहीं पर अंडे देना ठीक रहेगा।"

टिटहरी बोली— "तुम्हें तो मालूम ही है कि हर पूर्णमासी को समुद्र में ज्वार आता है। मुझे डर है कि कहीं ज्वार के बाद मेरे अंडे समुद्र में ही न समा जाएं। और फिर ज्वार से आकर्षित होकर बड़े-बड़े मतवाले हाथी भी यहां आ जाते हैं। यदि वे मेरे अंडों को अपने पैरों तले कुचल देंगे, तो क्या होगा?"

यह सुनकर टिटहरा बड़ी जोर से हंसा और बोला— "कैसी बातें करती हो, प्रिये! तुम्हें शायद मेरी शक्ति का नहीं पता! समुद्र की या हाथी की क्या मजाल है जो हमें या हमारे अंडों को हानि पहुंचा सके! तुम सारी चिंताएं छोड़ दो और इसी मनोरम स्थान पर अंडे दो।"

टिटहरी बोली— "देख लो, कहीं समुद्र के ज्वार में हमारे अंडे बह न जाएं।

टिटहरे ने कहा— "तुम चिंता क्यों करती हो? समुद्र में इतनी शक्ति नहीं है कि वह हमारे अंडों को बहा ले जाए। और अगर ले भी गया, तो मैं उसे इसका मज़ा चखा सकता हूं।"

समुद्र उन दोनों की बातें सुन रहा था। टिटहरे की गर्वोक्ति सुनकर पहले तो वह हंसा, फिर मन में सोचने लगा कि इस नाचीज पक्षी को अपने ऊपर इतना गर्व है! चलो, इसकी ताकत का खेल भी देख लिया जाए। यदि मैं इसके अंडे चुरा लूं, तो यह मेरा क्या कर लेगा? किंतु वह बोला कुछ नहीं।

कुछ दिन बाद टिटहरी ने अंडे दिए। टिटहरी और टिटहरा अपने अंडों को देखकर फूले न समाते। एक दिन वे दोनों भोजन की तलाश में कहीं गए थे। समुद्र ने देखा कि अंडे घोंसले में ही पड़े हुए हैं और टिटहरी और टिटहरे का कोई पता नहीं है। उसने सोचा, यह अच्छा मौका है! आज मैं इसके अंडे चुरा लेता हूं और इसके बाद इसकी ताकत देखूंगा। यह सोचने के बाद समुद्र ने टिटहरी के सारे अंडे चुरा लिए।

जब टिटहरी और टिटहरा लौटकर आए, तो उन्हें वहां अंडे नहीं मिले। वे दोनों हैरान और परेशान हुए। टिटहरी फूट-फूट कर रोने लगी। टिटहरा भी दुखी मन से उसे देखता रहा। कुछ देर बाद टिटहरी का रोना कुछ कम हुआ, तो उसे टिटहरे पर गुस्सा आने लगा। वह गुस्से में ही टिटहरे से बोली– "मैंने तुमसे पहले ही कहा था कि मुझे किसी दूसरे स्थान पर ले चलो। मुझे तो पहले ही मालूम था कि समुद्र की लहरों से मेरे अंडों का नाश हो जाएगा। मैंने तुम्हें कितना सावधान किया, पर तुम तो अपने अहंकार में इतने मस्त थे कि तुमने मेरी बात को सुना ही नहीं! अहंकार आदमी को कितना मूर्ख बना देता है, यह तुमने देख लिया न अब ! भुगतो अपनी मूर्खता का फल! मैं कहती हूं कि मुझे मेरे अंडे चाहिएं!"

टिटहरा यह सुनकर बहुत दुखी हुआ। टिटहरी ने उसे मूर्ख बता दिया, यह बात उसे बहुत बुरी लगी। वह गुस्से में बोला– "मैंने ठीक ही कहा था, पर तुमने मुझे मूर्ख बताकर अच्छा नहीं किया। खैर, कोई बात नहीं, अब तुम मेरी बुद्धि का चमत्कार देखो!"

टिटहरी उसकी बात सुनकर व्यंग्य से मुस्कराई और बोली– "रहने दो अपनी बुद्धि का चमत्कार! मुझे मेरे अंडे चाहिएं और तुम मुझे बस उन्हें वापस ला दो। चमत्कार फिर कभी दिखाना।"

"मैं अपनी बुद्धि के चमत्कार से ही तुम्हें तुम्हारे अंडे वापस दिलाऊंगा।" टिटहरे ने कहा।

"ऐसा तुम क्या करोगे?" टिटहरी बोली।

"मैं इस समुद्र को ही सुखाए देता हूं।"

टिटहरी उसे आश्चर्य से देखने लगी– "भले मानस, समुद्र से तुम्हारा क्या झगड़ा, जो तुम उसे सुखा दोगे! मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम अपने आपे में नहीं हो और कोई नई मुसीबत मोल लेने चले हो। जो मनुष्य अपनी शक्ति को जाने बिना दूसरे की शक्ति से लोहा लेना चाहता है, उसका उसी तरह से नाश हो जाता है जैसा कि आग के सामने जाने पर पतंगे का। मैं फिर कहती हूं कि थोड़ा बुद्धि से काम लो।"

टिटहरी की बात सुन कर टिटहरे को बहुत गुस्सा आया, पर उसने बड़े शांत स्वर में कहा–''ऐसा मत कहो, प्रिये! जिनमें थोड़ा-सा भी उत्साह होता है, वे कम ताकत रखते हुए भी बड़े-बड़े ताकतवरों से भिड़ जाते हैं। तुम देखती जाओ, मैं अपनी चोंच से समुद्र के सारे पानी को खाली करके इसकी जगह सूखी जमीन बना दूंगा!''

टिटहरी हंसी और बोली– ''इस तरह बढ़-चढ़कर बातें बनाने का क्या लाभ है? तुम्हारी बातों पर कोई मूर्ख ही विश्वास करेगा। जहां सैकड़ों नदियां समा जाती हैं, उस समुद्र को तुम्हारी यह चोंच भला कैसे खाली कर पाएगी? क्या तुम्हें पता नहीं कि तुम्हारी इस चोंच में केवल एक बूंद पानी ही आता है! इस मामूली-सी चोंच से तुम कौन-सा करतब दिखा दोगे? तुम्हारा दम्भ और दुस्साहस ही तुमसे यह बुलवा रहा है!''

टिटहरा बोला– ''दुस्साहस नहीं, साहस कहो, प्रिये! साहस ही सारे कल्याण का मूलमंत्र है। तुम्हें पता नहीं, मेरी चोंच लोहे जैसी सख्त और ताकतवर है और दिन तथा रात भी बहुत लम्बे होते हैं। तुम क्या समझती हो कि मैं इस समुद्र को सुखा नहीं सकता।''

टिटहरे की बात सुनकर टिटहरी सोचने लगी कि इस मूर्ख से बहस करने का कोई लाभ नहीं है। यह जिद्दी है और अपनी जिद को जरूर पूरी करेगा। कुछ सोचकर वह बोली– ''यदि तुम्हें समुद्र से बैर करना ही है, तो तुम मेरी एक सलाह मानो।''

''बोलो, क्या सलाह दे रही हो?'' टिटहरा झुंझलाकर बोला।

''देखो, अकेला लड़ पाना तुम्हारे बस की बात नहीं है। यदि तुम्हें इतने बड़े समुद्र से लड़ाई लड़नी ही है, तो तुम्हें अपनी ताकत भी बढ़ानी होगी। इसके लिए तुम्हें अपने सभी मित्र पक्षियों को अपने साथ लेना होगा। यदि छोटी-छोटी चीजें इकट्ठी हो जाएं, तो उन्हें जीत पाना बड़े-से-बड़े ताकतवर के लिए भी मुश्किल हो जाता है। इसलिए पहले तुम अपने सभी मित्रों को इकट्ठा करो और उनसे सलाह-मशवरा करके उन्हें अपने साथ लो, ताकि समुद्र को सुखाने में वे तुम्हारी सहायता कर सकें।'' टिटहरी ने समझाया।

''यह बात तो तुमने ठीक ही कही है।'' मैं अभी अपने मित्रों के पास जाता हूं। कहकर टिटहरा चला गया।

कुछ देर बाद वह बगुले, सारस और मोर आदि पक्षियों को अपने साथ ले कर आया। उन सबको इकट्ठा करके वह उनसे बोला– ''मित्रो, मैं बड़ी विपत्ति में फंस गया हूं। इस समुद्र ने मेरे अंडे चुरा लिए हैं। मेरी पत्नी बहुत रो रही है। उसका रोना मुझसे देखा नहीं जा रहा है। समुद्र ने उसे जो दुख दिया है, मैं उसका बदला लेना चाहता हूं। आप लोगों की क्या सलाह है?''

''वह तो ठीक है, बदला तुम अवश्य लो, लेकिन इसका उपाय क्या है? तुम इतने बड़े समुद्र से बदला कैसे लोगे?'' सारस ने पूछा।

''इस समुद्र ने मेरा अपमान किया है, इसलिए मैंने सोचा है कि इसे सुखाकर अपने अंडे वापस ले लूं। यदि हम सब मिलकर अपनी-अपनी चोंच से इसे खाली करें, तो यह बहुत जल्दी ही सूख जाएगा और इसके स्थान पर सूखी जमीन निकल आएगी। तब मुझे आसानी से अपने अंडे मिल जाएंगे।'' टिटहरे ने कहा।

टिटहरे की बात सुनकर सारे पक्षी हक्के-बक्के रह गए। वे आपस में सलाह करने लगे और मन-ही-मन उसकी मूर्खता पर हंसते रहे। कुछ देर बाद आपस में सोच-विचार करके उन्होंने इस बारे में अपनी असमर्थता जाहिर की।

उन्होंने आपस में सलाह करके कहा, ''मित्रवर, तुम्हारे ऊपर जो संकट आया है, उससे हम सब बहुत दुखी हैं, किंतु समुद्र को सुखाने जैसा बड़ा काम हम नहीं कर पाएंगे। हां, हम तुम्हारी सहायता अवश्य करना चाहते हैं।''

''यदि समुद्र को सुखाने में तुम मेरी सहायता नहीं कर सकते, तो फिर तुम मेरी और क्या सहायता कर सकते हो? तुम लोग जाओ, मैं अकेला ही यह काम करूंगा।'' टिटहरे ने गुस्से में कहा।

टिटहरे को गुस्से में देखकर वे बोले– ''धीरज रखो, मित्र! हम तुम्हारी सहायता अवश्य करेंगे। तुम तो जानते ही हो कि हम सब पक्षियों के स्वामी गरुड़ हैं, अतः हम सब उनके पास जाकर उन्हें तुम्हारे इस अपमान के बारे में बताएंगे ताकि वह अपनी जाति के इस अपमान से क्रोधित होकर समुद्र से बदला ले सकें।''

यह निश्चय करके वे सब गरुड़ के पास गए और उसे टिटहरी के साथ घटी दुर्घटना के बारे में बताया।

गरुड़ ने जब यह सुना, तो उसे समुद्र पर बहुत क्रोध आया। वह बोला– ''यह सिर्फ टिटहरे का अपमान नहीं है, बल्कि पूरी पक्षी-जाति का अपमान है और चूंकि मैं पक्षी-जाति का स्वामी हूं, इसलिए यह मेरा भी अपमान है। मैं इस अपमान का बदला समुद्र से जरूर लूंगा।'' फिर वह टिटहरे की तरफ मुड़कर बोला– ''तुम परेशान मत होओ, मित्र! तुम्हारे साथ जो दुर्घटना घटी है, उसका मुझे भी बहुत दुख है। मैं तुम्हें पूरा सहयोग दूंगा और इस दुष्ट समुद्र को निश्चय ही सुखा डालूंगा।''

वे लोग आपस में बातें कर ही रहे थे कि सहसा भगवान विष्णु का दूत आया और गरुड़ से बोला– ''हे गरुड़राज, भगवान विष्णु ने आपको तुरंत बुलाया है। वह देवताओं के काम से अमरावती जा रहे हैं, इसलिए तुम शीघ्र ही उनके पास चले जाओ!''

गरुड़ बड़े दुखी स्वर में बोला– ''हे दूत, भगवान से मेरा नमस्कार कहना और उनसे यह भी पूछना कि वह मुझ जैसे तुच्छ सेवक का क्या करेंगे। अच्छा हो कि वह किसी अन्य सेवक को अपना वाहन बना लें और मुझे छोड़ दें!''

यह सुनकर दूत बहुत चिंतित हुआ और बोला– "हे गरुड़राज, तुमने भगवान विष्णु के लिए पहले तो कभी ऐसा नहीं कहा! आज क्या बात हो गई? क्या भगवान ने या किसी और ने तुम्हारा कोई अपमान किया है? तुम मुझे बहुत चिंतित दिखाई दे रहे हो! जरा बताओ, आखिर बात क्या हुई है?"

गरुड़ ने उत्तेजित होकर कहा– "उन्हीं भगवान विष्णु के निवास यानी समुद्र ने हमारे भाई टिटहरे के अंडे चुरा लिए हैं। यदि भगवान् विष्णु ने उसे इसका दंड नहीं दिया, तो मैं उनका सेवक न रह सकूंगा। यह मैंने निश्चय कर लिया है। मेरा यह निश्चय भगवान को बता देना!"

गरुड़ की बात सुनकर दूत चुपचाप चला गया और उसने भगवान विष्णु से गरुड़ की सारी बात कह दी। गरुड़ के क्रोध की बात सुनकर भगवान विष्णु तुरंत ही उसके पास पहुंचे।

जब गरुड़ ने भगवान विष्णु को अपनी गुफा के सामने खड़े देखा, तो उसने लज्जा से सिर झुका लिया। भगवान विष्णु बोले– "कहो गरुड़राज, इतने चिंतित क्यों हो?"

गरुड़ सिर झुकाए हुए ही भगवान को प्रणाम करके बोला– "हे भगवान! आपके निवास-स्थल यानी उस मद-मस्त समुद्र ने मेरे जाति-भाई टिटहरे के अंडे चुराकर उसे बहुत पीड़ा पहुंचाई है और इस तरह मेरा भी अपमान किया है। आपकी शर्म करते हुए मैं उसे सुखा नहीं रहा हूं। किंतु मेरा यह जो अपमान हुआ है, उसे देखते हुए आप स्वयं सोचें कि उसे क्या दंड दिया जाए!"

भगवान विष्णु बोले– ''तुम ठीक ही कहते हो, गरुड़राज! पर तुम्हारा क्रोध कैसे शांत हो? अगर टिटहरे को उसके अंडे वापस मिल जाएं, तो क्या तुम्हारा क्रोध शांत हो जाएगा।''

''उसे टिटहरे से क्षमा भी मांगनी होगी, भगवन!'' गरुड़ बोला।

''ठीक है! आओ, हम चलकर समुद्र से कहते हैं कि वह टिटहरे को उसके अंडे वापस कर दे और उससे क्षमा मांग ले!'' कहते हुए भगवान विष्णु समुद्र की ओर चल पड़े। उनके पीछे-पीछे समस्त पक्षी-गण भी चल दिए।

समुद्र के पास पहुंचकर भगवान विष्णु बोले– ''समुद्र! तुमने टिटहरे के अंडे चुराकर ठीक काम नहीं किया है। अब भलाई इसी में है कि तुम चुपचाप उसके अंडे लौटा दो और उससे क्षमा मांग लो, वरना मैं अपने अग्नि-बाण से तुम्हें सुखा डालूंगा।''

यह सुनकर समुद्र भगवान विष्णु के चरणों में पड़ गया और उसने टिटहरे से क्षमा मांगते हुए उसके अंडे लौटा दिए। टिटहरा बहुत खुश होता हुआ टिटहरी के पास पहुंचा और उसे उसके अंडे सौंपते हुए बोला– ''मैंने कहा था न, कि मैं अपने अंडे वापस लेकर रहूंगा।''

टिटहरी अपने अंडे पाकर बहुत खुश हुई और बोली– ''आज मैं तुम्हारे बुद्धि-बल को मान गई।''

# कुलघाती मेंढक

एक कुए में बहुत सारे मेंढक रहते थे। उनका पूरा एक कुटुम्ब था। उन मेंढकों में से एक का नाम गंगदत्त था। वह बड़ा मूर्ख और उद्दंड था। उसकी मूर्खता और उद्दंडता की वजह से सारे मेंढक उससे अप्रसन्न रहते थे। कुछ मेंढक तो उसे चिढ़ाया भी करते थे। एक दिन जब मेंढकों ने उसे कुछ ज्यादा ही परेशान कर दिया, तो उसने अपने मन में निश्चय कर लिया कि वह अपने कुटुम्ब को छोड़कर कहीं चला जाएगा।

कुए में रहट लगा हुआ था। गंगदत्त रहट की डोलची में जा बैठा और जब रहट चला, तो वह उसके सहारे कुए से बाहर निकल आया। उसे अपने साथियों पर बहुत गुस्सा आ रहा था। कुए से बाहर निकलकर वह उन लोगों से बदला लेने की तरकीब सोचने लगा। तभी उसे एक काला सांप दिखाई दिया जो अपने बिल में घुस रहा था।

सांप को देखते ही वह खुशी से फूला न समाया और सोचने लगा कि इसी सांप के माध्यम से उन मेंढकों से बदला लेगा। वह मन में विचार करने लगा कि सांप को कुए में ले जाकर अपने सभी कुटुम्बियों का नाश करवाऊंगा। नीति के अनुसार अपने सुख के लिए जैसे लोग कांटे को कांटे से ही निकालते हैं, वैसे ही अपने भयंकर शत्रु का नाश उतने ही भयंकर शत्रु से कराया जाना चाहिए।

यह सोचकर वह सांप के बिल के पास पहुंचा और उसे बाहर बुलाने के लिए आवाज लगाई। जैसे ही सांप ने गंगदत्त की आवाज सुनी, वह सोचने लगा कि यह कौन है, जो मुझे बुला रहा है? यह मेरी जाति का तो है नहीं, क्योंकि इसकी बोली सांप जैसी नहीं है। फिर, इस संसार में किसी और से मेरी जान-पहचान भी नहीं है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि कोई मंत्र जानने वाला या दवाएं बनाने वाला व्यक्ति मुझे पकड़ने के लिए आया हो, या कोई आदमी निजी दुश्मनी के कारण किसी को कटवाने के लिए मुझे बुला रहा हो? उसने दो मिनट विचार किया और फैसला किया कि बिल में रहकर ही उससे बात करूंगा और पता लगाऊंगा कि यह कौन है?

यह सब सोचकर सांप ने बिल में से ही पूछा- "आप कौन हैं?"

"मैं मेंढकों का राजा हूं। मेरा नाम गंगदत्त है।" मेंढक ने उत्तर दिया।

"कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं? आपके आने का क्या प्रयोजन है?" सांप ने पूछा।

"बंधुवर! मैं आपसे मित्रता करने के लिए आपके पास आया हूं।" मेंढक बोला।

यह सुनकर सांप बोला, "वह तो ठीक है, किंतु आप तो जानते हैं कि सांप और मेंढक में पुरानी शत्रुता है। आप मित्रता करने आए हैं, लेकिन आग और तिनके में भला कहीं मेल हुआ है।"

गंगदत्त पहले तो सांप की बात से चौंका, फिर उसने संभलकर उत्तर दिया– "आप सत्य कहते हैं, बंधुवर! आप स्वभावतः हमारे शत्रु हैं, किंतु मैं काफी सोच-समझकर ही आपसे मित्रता करने आया हूं।"

"ऐसी क्या बात हो गई, जो आपको मेरी मित्रता की जरूरत आ पड़ी?" सांप ने फिर पूछा।

मेंढक बोला– "मेरा बहुत अपमान किया गया है। इसीलिए मुझे आपकी सहायता की आवश्यकता है।"

"अपमान! किसने किया है आपका अपमान?" सांप बोला।

"मेरे कुटुम्बियों ने!" गंगदत्त ने उत्तर दिया, "मुझे उनसे बदला लेना है।"

यह सुनकर सांप ने पूछा– "लेकिन तुम रहते कहां हो! कुएं में या तालाब में अथवा बावड़ी में या झील में?"

"यहीं पास में ही पक्के पत्थरों से बने कुए में।"

सांप बोला– "अव्वल तो मेरे पैर नहीं हैं, इसलिए कुए में प्रवेश करना मेरे लिए सम्भव नहीं है। और मान लो, मैं प्रवेश कर भी जाऊं तो मेरे लिए वहां कोई ऐसा स्थान नहीं है, जहां बैठकर मैं तुम्हारे कुटुम्बियों को मार सकूं। इसलिए अच्छा यही होगा कि तुम मित्रता-वित्रता की बात छोड़कर यहां से चले जाओ।"

यह सुनकर गंगदत्त पहले तो कुछ निराश हुआ। फिर कुछ सोचकर बोला- "ऐसा क्यों कहते हो, मित्र! मैं सब कुछ सोचकर ही आपको निमंत्रण दे रहा हूं। आप आइए तो सही। मैं आसानी से आपका प्रवेश कुए में करा दूंगा। और आपको यह भी बता दूं कि उस कुए में जल के किनारे पर एक बहुत सुंदर कोटर है। आप वहां बैठकर उन पापियों को आसानी से मार सकेंगे।"

यह सुनकर सांप मन-ही-मन सोचने लगा कि मैं तो अब बूढ़ा हो गया हूं और बुढ़ापे की वजह से कभी-कभार ही कोई चूहा मेरे हाथ लग पाता है, वरना तो अक्सर ही भूखा रह जाता हूं। इस कुलघाती मेंढक ने मेरे लिए यह सुअवसर ला दिया है और मेरे सुखपूर्वक जीने का अच्छा उपाय सुझा दिया है। सांप ने तुरंत ही निर्णय लिया कि वह कुए में जाकर उन सभी मेंढकों को खा जाएगा। अपने इस निर्णय से अवगत कराने के लिए वह मेंढक से बोला- "मित्र गंगदत्त! यदि ऐसी बात है तो चलो, मैं तुम्हारे पीछे-पीछे चलता हूं।"

मेंढक सांप की बात सुनकर खुशी से फूला न समाया और बोला– ''बंधुवर, मैं आपको सुखपूर्वक कुएं तक ले जाऊंगा और वह कोटर भी दिखा दूंगा। परंतु मेरी एक विनती भी है।''

''वह क्या!'' सांप चौंककर बोला।

''विनती यही है कि आप केवल उन्हीं मेंढकों को खाएं, जिन्हें मैं आपको दिखाऊंगा। आप मुझे यह आश्वासन देने की कृपा करें कि आप मेरे परिवार वालों को नहीं खाएंगे।'' गंगदत्त डरते-डरते बोला।

''कैसी बातें करते हो, गंगदत्त! अब तो तुम मेरे मित्र हो गए हो, इसलिए तुम्हें डरना नहीं चाहिए। तुम्हारे कहने के अनुसार मैं तुम्हारे कुटुम्बियों को ही खाऊंगा।'' यह कहकर सांप बिल से बाहर निकल आया और उसने गंगदत्त का आलिंगन कर लिया।

सांप के आश्वासन और व्यवहार से गंगदत्त बहुत प्रसन्न हुआ और बोला– ''तो चलो, मित्रवर!''

''चलो!'' कहकर सांप मेंढक के साथ चल दिया।

इसके बाद मेंढक सांप को लेकर कुएं पर पहुंचा और रहट की डोलची के रास्ते से उसे अपने घर ले गया और उसे वह कोटर भी दिखा दिया।

जिस-जिस मेंढक की तरफ गंगदत्त ने इशारा किया, सांप धीरे-धीरे उस-उस मेंढक को खाता चला गया। इस तरह वह गंगदत्त के सारे कुटुम्बियों को खा गया।

इसके बाद सांप को मेंढकों का अभाव होने लगा, तो एक दिन वह गंगदत्त से बोला– ''मित्र गंगदत्त, तुम्हारे सारे शत्रु तो समाप्त हो गए। मैंने अपना मित्र-धर्म निभा दिया, अब मित्र-धर्म निभाने की बारी तुम्हारी है। अब मैं भूखा हूं, तो मेरे भोजन की व्यवस्था भी तुम्हें ही करनी है, क्योंकि तुम्ही मुझे यहां लाए हो।''

यह सुनकर गंगदत्त पहले तो घबराया, फिर कुछ सोचकर बोला–''मित्र, आपने मित्रोचित्त कार्य कर दिया है इसके लिए मैं आपका आभारी हूं। अब आप इसी रहट की डोलची के रास्ते से अपने घर वापस चले जाइए। यदि कभी आपको मेरी सहायता की आवश्यकता पड़े, तो मैं सहर्ष करूंगा।''

सांप ने जब यह सुना, तो उसे गंगदत्त पर बहुत गुस्सा आया। उसने मन-ही-मन सोचा कि जैसे-तैसे तो मेरा भोजन का प्रबंध हुआ था और यह मक्कार अब मुझे वापस चले जाने को कह रहा है। वह बोला– ''गंगदत्त, क्या तुमने यह भी सोचा है कि तुम क्या कह रहे हो? मैं भला वहां कैसे जा सकूंगा? मेरे बिल में तो कोई और सांप घुस गया होगा! अब मैं वहां जाकर उसे कैसे भगाऊंगा?''

सांप की बात सुनकर मेंढक बुरी तरह घबरा गया और स्वयं को कोसने लगा कि मैंने कैसी बुरी घड़ी में इस दुष्ट को कुएं में आने की दावत दी थी। यह तो अब जाने का नाम ही नहीं ले रहा और यहीं पसरा रहना चाहता है। कुछ हिम्मत करके वह बोला– "मित्रवर, मैंने अपने शत्रुओं के नाश के लिए आपसे सहायता मांगी थी। आपने मेरी सहायता की, इसके लिए आपका बहुत-बहुत धन्यवाद। किंतु, अब मैं आपके भोजन की व्यवस्था कहां से करूं? आप बिल्कुल निश्चित रहिए, आपके बिल में कोई नहीं घुसा होगा और यदि कोई घुसा भी होगा, तो आप जैसे बलशाली को देखकर स्वयं ही वहां से चलता बनेगा।"

सांप को गंगदत्त की इस बात पर बहुत क्रोध आया। वह आवेश में ही बोला– "गंगदत्त, तुमने उचित बात नहीं कही। तुम मुझे मेरे घर से लेकर आए हो, इसलिए मेरे जीवन की व्यवस्था करना तुम्हारा कर्तव्य है। मैंने तुम पर उपकार किया है और तुम उसके बदले मुझे यहां से भगा रहे हो! मैं फिर एक बार बता रहा हूं कि मैं यहां से लौटकर कहीं नहीं जाऊंगा। मैं इसी कोटर में बैठूंगा और तुम्हें मेरे भोजन की व्यवस्था करनी होगी। अच्छा तो यह होगा कि तुम अपने परिवार के एक-एक सदस्य को मेरे पास स्वयं ही भेजते रहो, जिसे खाकर मैं अपनी भूख मिटा सकूं। यदि तुमने ऐसा नहीं किया, तो मुझे जबरन उन्हें पकड़-पकड़कर खाना पड़ेगा।"

अब तो गंगदत्त बहुत दुखी हो गया। उसके सामने कोई चारा नहीं था। उसने सोचा कि यदि मैं इसको रोकूंगा भी, तो यह जबरदस्ती मेरे परिवार के सभी सदस्यों को खा जाएगा। बहुत दुखी मन से उसने कहा– "ठीक है, मित्र! जैसा तुम चाहोगे, वैसा ही मैं करूंगा। मैं अपने परिवार के एक-एक सदस्य को आपके पास भेज दूंगा।"

गंगदत्त सांप को प्रतिदिन एक-एक मेंढक देने लगा, पर सांप गंगदत्त के दिए मेंढक के अलावा भी चोरी-छिपे दो-चार मेंढक और खा जाता। एक दिन उसने गंगदत्त के बेटे पृथुदत्त को भी खा लिया। गंगदत्त को जब पता चला, तो वह अपने को धिक्कारता हुआ जोर-जोर से रोने लगा। जब वह रो रहा था तो उसकी पत्नी ने भी उसे बुरी तरह लताड़ा– ''अब इतनी जोर-जोर से रोने का क्या लाभ? तुमने अपने कुटुम्बियों का तो नाश करवा ही दिया। उनके मर जाने के बाद अब तुम्हारी रक्षा कौन करेगा? अपने कुल के साथ घात करने का यही तो नतीजा होता है। मैं कहती हूं कि यह रोना- धोना छोड़कर अपने बचने का रास्ता निकालो।''

परंतु गंगदत्त का कोई भी उपाय सफल नहीं हो पाया और सांप एक-एक करके गंगदत्त के परिवार के सभी मेंढकों को खा गया। केवल गंगदत्त ही बचा रह गया। गंगदत्त बहुत दुखी था। वह अपना दुख अब किसी से कह भी नहीं सकता था, क्योंकि उसकी बात सुनने वाला कोई बचा ही नहीं था। ''यह मैंने क्या किया! अपने काल को यहां बुला लाया! हे भगवान, अब मैं क्या करूं?'' उसने सोचा। उसे सांप पर बहुत क्रोध आ रहा था।

गंगदत्त इसी सोच-विचार में डूबा हुआ था। तभी वह सांप उसके सामने आकर बैठ गया। गंगदत्त ने मन में सोचा कि इस दुष्ट का कितना अच्छा नाम है-प्रियदर्शन! नाम इतना अच्छा है और इसका काम कैसा भद्दा है। दुख और व्यंग्य के स्वर में गंगदत्त बोला– ''कहिए, प्रियदर्शन जी! अब मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं?''

''मैं भूखा हूं, मित्र गंगदत्त! सारे मेंढक समाप्त हो गए! अब मैं क्या खाऊं? तुम मुझे कुछ भोजन दो, क्योंकि तुम्ही मुझे यहां लाए हो!'' सांप ने कहा।

गंगदत्त ने जब यह सुना, तो उसके होश उड़ गए। भय से उसका चेहरा पीला पड़ने लगा। अब देने को बचा ही क्या था? सिर्फ गंगदत्त! वह सोचता जाता था और लगातार दुखी होता जाता था। पर तभी उसे बच निकलने का एक उपाय सूझा। साहस बटोरकर वह बोला– ''मित्र प्रियदर्शन, मेरे होते हुए तुम्हें भोजन के विषय में कोई चिंता नहीं करनी चाहिए। यदि तुम सहमत हो जाओ तो मैं दूसरे कुए के मेंढकों को भी बहला-फुसलाकर यहां ले आऊंगा। इस तरह तुम्हारा कई महीनों का भोजन तुम्हें मिल जाएगा।''

यह सुनकर सांप प्रसन्न हो गया और बोला– ''ठीक है, ऐसा ही कर लो। मैं तो तुम्हें अपने भाई के समान मानता हूं और यदि तुमने मेरे लिए कई महीनों के भोजन की व्यवस्था कर दी, तो मैं तुम्हें अपने पिता के समान मानने लगूंगा। अतः तुम शीघ्र जाओ और दूसरे कुए के मेंढकों को यहां ले आओ।''

यह सुनकर गंगदत्त की जान में जान आई। उसने मन-ही-मन ईश्वर को धन्यवाद दिया कि उसे सही समय पर सद्बुद्धि आ गई और वह उस दुष्ट सांप के चंगुल से बच निकलने में सफल हो गया। वह तुरंत रेहट की डोलची पर चढ़ा और भगवान का नाम लेता हुआ कुए से बाहर निकल आया। बाहर आकर उसने चैन की सांस ली। उसके मन में अपने बचने की खुशी तो थी, लेकिन अपनी करनी के पछतावे के रूप में उसकी आंखों से आंसुओं की धारा भी बह रही थी।

सांप कई दिन तक तक गंगदत्त की प्रतीक्षा करता रहा, लेकिन गंगदत्त ने लौटने का नाम नहीं लिया। काफी प्रतीक्षा कर लेने के बाद सांप अपने कोटर से बाहर निकला। तभी उसकी नजर दूसरे कोटर में बैठी एक मादा घड़ियाल पर पड़ी। सांप उससे बोला– ''बहन, तुम मेरी थोड़ी-सी सहायता करो।''

मादा घड़ियाल ने कहा– ''कैसी सहायता!''

सांप बोला– ''बहन, गंगदत्त को तो तुम जानती ही हो। वह पता नहीं कहां चला गया है। तुम कृपया जाकर किसी तालाब में उसे ढूंढ लो और मेरी ओर से कह देना कि यदि और मेंढक नहीं आ रहे हों तो तुम अकेले ही तुरंत यहां चले आओ। मैं तुम्हारे बिना यहां नहीं रह सकता। तुम उससे कहना कि प्रियदर्शन को तुम्हारे बिना बहुत दुख हो रहा है और उसने शपथ ली है कि वह तुम्हारे विरुद्ध कोई आचरण नहीं करेगा, क्योंकि यह धर्म के विरुद्ध होगा। बस बहन, मुझ पर इतनी कृपा कर दो और गंगदत्त को शीघ्र यहां ले आओ।''

मादा घड़ियाल को सांप पर दया आ गई और वह गंगदत्त को तलाश करने के लिए कुए से बाहर निकल गई। सौभाग्य से गंगदत्त उसे शीघ्र ही मिल गया। उसे देखकर मादा घड़ियाल ने कहा– ''बंधु गंगदत्त, वह तुम्हारा मित्र प्रियदर्शन तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है, इसलिए तुम शीघ्र ही उसके पास जाओ। वह तुम्हारे बिना बहुत दुखी है। उसने तुम्हें कोई हानि न पहुंचाने की शपथ ली है, इसलिए चिंता की कोई बात नहीं है। तुम निर्भय होकर वहां चले जाओ।''

मादा घड़ियाल की बात सुनकर गंगदत्त पहले तो हंसा और फिर बोला– ''बहन, तुमने जो कहा वह तो ठीक है। लेकिन उस दुष्ट को मैं भली-भांति पहचान गया हूं। वह कई दिनों से भूखा है, इसीलिए मुझे अपने पास बुलाना चाहता है। तुम तो जानती हो बहन, कि भूखा व्यक्ति क्या पाप नहीं कर लेता है। इसीलिए तुम उस प्रियदर्शन नामक सांप से कहना कि गंगदत्त अब दुबारा उस कुए में नहीं आएगा। मैंने तो उसे अपना कुटुम्ब ही खिला दिया। अब केवल मैं ही बचा हूं, तो क्या मैं भी उसका ग्रास बन जाऊं।''

मादा घड़ियाल को विदा करके उस कुलघाती मेंढक ने चैन की सांस ली।

# दो मुंह वाला पक्षी

बहुत समय पहले एक तालाब में एक अद्भुत पक्षी रहता था । दूर-दूर से लोग उसे देखने के लिए आते थे । वह था भी बहुत सुंदर । किंतु लोग उसे देखने के लिए दूर-दूर से उसकी एक विशेष विचित्रता के कारण आते थे। वह विचित्रता यह थी कि उसका पूरा शरीर तो एक ही पक्षी था, किंतु उसके मुंह दो थे। वे दोनों मुंह आपस में बड़े सहयोग से रहते थे। वे दोनों ही जानते थे कि उनके द्वारा खाई गई कोई भी चीज एक ही पेट में पहुंचती है, अतः वे दोनों ही मुंह भोजन के लिए कभी आपस में नहीं झगड़ते थे और मिल-बांटकर खा लिया करते थे। लोग उसे 'भारुंड पक्षी' कहते थे।

एक दिन वह विचित्र पक्षी पास के ही समुद्र के किनारे घूम रहा था। अचानक ही उसकी दृष्टि एक अद्भुत फल की ओर गई। उसने सोचा कि यह अवश्य ही कोई दुर्लभ फल है और समुद्र देवता ने अपनी लहरों के द्वारा उसे खाने के लिए भेजा है।

भारुंड पक्षी उस फल के पास गया। उसने फल को उठाया और चखकर देखा। उसने पाया कि उस फल का तो स्वाद ही अनोखा है। इतना अनोखा कि उसने अपने पूरे जीवन में कभी इतना स्वादिष्ट फल नहीं खाया था। वह बहुत प्रसन्न हुआ और कहने लगा--''कहीं यह फल कल्पवृक्ष अथवा हरिचंदन वृक्ष का तो नहीं है। यह भी हो सकता है कि यह कोई अमर-फल हो, जिसके खाने से खाने वाले को अमरत्व प्राप्त हो जाता है। मुझे तो यह सौभाग्य से ही प्राप्त हुआ है!''

भारुंड पक्षी की यह बात उसके उस मुंह से निकल रही थी, जिससे उसने उस फल को चखा था। उसकी यह बात सुनकर दूसरा मुंह भी उस फल को खाने के लिए बेचैन हो उठा। वह पहले वाले मुंह से बोला-''अरे, जरा मुझे भी दिखा कि इस फल का स्वाद कैसा है!''

यह सुनकर पहले वाला मुंह कुछ नहीं बोला और चुपचाप फल खाता रहा। यह देखकर दूसरे मुंह को बड़ा अजीब लगा। उसने सोचा शायद पहले वाले मुंह ने उसकी बात सुनी नहीं है। इसीलिए वह दुबारा बोला-''यदि यह इतना ही मीठा फल है, तो इसमें से मुझे भी थोड़ा-सा दे दे ताकि मेरी जीभ भी इसके स्वाद का आनंद ले सके।''

यह सुनकर भी पहला मुंह चुप रहा और फल को खाता रहा। यह देखकर दूसरे मुंह को बहुत क्रोध आया। वह बोला-''तू ने मेरी बात सुनी नहीं क्या? मैं तुझसे कह रहा हूं कि इसमें से थोड़ा-सा फल खाने के लिए मुझे भी दे दे। मैं भी इस फल के स्वाद का आनंद लेना चाहता हूं।''

यह सुनकर पहला मुंह बड़ी जोर से हंसा, किंतु बोला कुछ नहीं।

"तू हंस क्यों रहा है? क्या तू मुझे फल नहीं देगा?" दूसरा मुंह बोला। पहला मुंह हंसता हुआ बोला—"तुझमें और मुझमें क्या कोई फर्क है? जो फल मैं खा रहा हूं, क्या इसका यह अर्थ नहीं है कि वह फल तू भी खा रहा है?"

यह सुनकर दूसरा मुंह बोला—"ऐसा कैसे हो सकता है?"

पहला मुंह पुनः हंसकर बोला—"तू तो बिलकुल बुद्धू है! अरे, जब हम दोनों का एक ही पेट है और उस पेट की तृप्ति भी एक है, तो अलग-अलग खाने से क्या लाभ है? आखिर हम दोनों में से कोई भी खाए, जाएगा तो उसी एक ही पेट में!"

"तेरी बात ठीक हो सकती है। किंतु, जिस स्वाद का आनंद तू ले रहा है, क्या मैं वह स्वाद अनुभव कर सकता हूं? तू इस फल को इतना मीठा बता रहा है! लेकिन क्या मुझे केवल तेरे कहने पर विश्वास करके संतोष कर लेना चाहिए? मैं कहता हूं कि थोड़ा-सा फल मुझे भी दे दे।" दूसरे मुंह ने गुस्से से कहा।

पहला मुंह बोला—"बेकार झगड़ा क्यों करता है? फल तूने खाया या मैंने, बात एक ही है। इससे तो अच्छा यह है कि इस बचे हुए भाग को मैं अपनी पत्नी को दे दूं, ताकि वह भी इसकी मधुरता का आनंद ले सके।" यह कहकर भारुंड ने बचा हुआ फल पत्नी को दे दिया। उसकी पत्नी बहुत प्रसन्न हुई और उसने वह फल खा लिया।

पहले मुंह का यह आचरण देखकर दूसरा मुंह बहुत दुखी हुआ और उस दिन से वह हर समय झुंझलाया हुआ रहने लगा। वह बदला लेने के अवसर की ताक में रहने लगा। उसने मन-ही-मन यह निश्चय कर लिया कि वह पहले वाले मुंह को उसके इस स्वार्थी व्यवहार का मजा चखाकर ही रहेगा।

एक दिन जब वह पहले वाले मुंह से बदला लेने के बारे में सोच ही रहा था कि अचानक उसकी दृष्टि एक विष-फल पर पड़ गई। उसने सोचा कि पहले वाले मुंह से बदला लेने का यही अचूक अवसर है। उसने उस विष-फल को उठा लिया। और मन ही मन बोला कि इस दुष्ट मुंह ने उस दिन मीठा फल चखने के लिए देने में आनाकानी करके मेरा घोर अपमान किया था। आज वह अवसर आ गया है जब मैं उस अपमान का हिसाब चुकता कर सकता हूं। यह सोचकर वह पहले मुंह से बोला—"अरे निर्दय, तू नीच और स्वार्थी है। तूने उस दिन वह मीठा फल अकेले ही खा लिया था। आज मैं तुझसे उस अपमान का बदला लूंगा।"

"वह कैसे!" पहले वाला मुंह बोला।

"तूने वह फल अकेले ही खा लिया था। आज मुझे यह फल मिल गया है और मैं भी इस फल को अकेले ही खाऊंगा।" दूसरा मुंह बोला।

''ठीक है, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं तुझसे बिलकुल भी नहीं मांगूंगा।'' पहला मुंह बोला।

''इसके लिए तो धन्यवाद! किंतु तू मुझे खाने से रोकना भी मत।'' दूसरा मुंह बोला।

''क्यों, मैं क्यों रोकने लगा!'' पहला मुंह बोला।

इस पर दूसरे मुंह ने कहा—''सोच ले! यह तो मुझे मालूम है कि तू मुझे रोकेगा। किंतु, मैं तेरी बात मानूंगा नहीं।''

''मैं तुझे क्यों रोकने लगा भला? ऐसा इस फल में है ही क्या!'' पहले मुंह ने कहा।

यह सुनकर दूसरा मुंह बड़ी जोर से हंसा और बोला—''खैर, तूने मुझे खाने से न रोकने का वचन तो दे ही दिया है। अब मैं तुझे यह भी बता ही दूं कि यह विष-फल है!''

यह सुनकर पहला मुंह आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगा और बोला—''क्या तू विष-फल खाएगा?''

''और क्या! आज मैं विष-फल ही खाऊंगा।'' दूसरा मुंह हंसकर बोला।

दूसरे मुंह की बात सुनकर पहला मुंह बुरी तरह कांप गया और बोला—''ऐसा न कर, भाई! यह विष-फल मत खा! भगवान के लिए अपने ऊपर और मेरे ऊपर दया कर!''

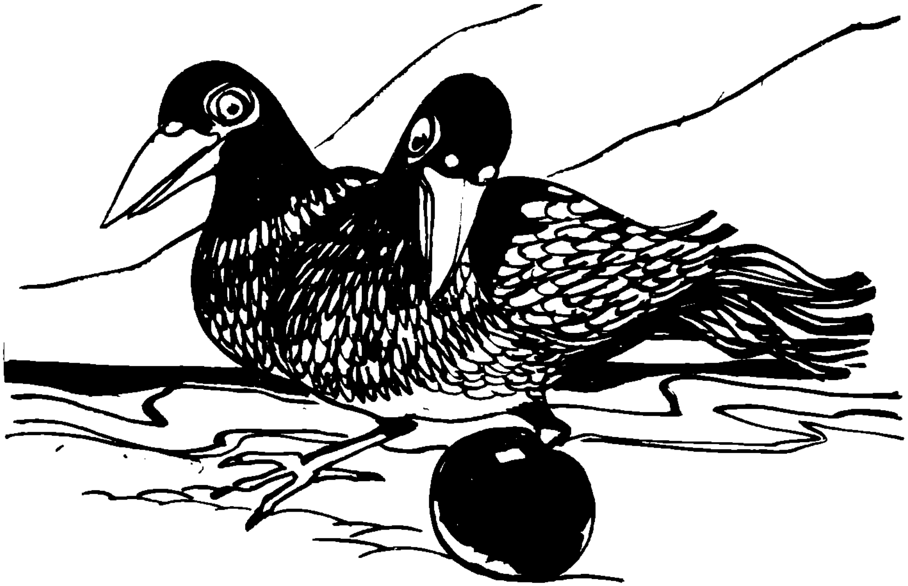

''क्यों न खाऊं! क्या तूने उस दिन मेरी बात मानी थी?'' दूसरा मुंह बोला।

इस पर पहला मुंह बोला—''तू मूर्ख है! क्या तुझे पता नहीं कि यदि तू इसे खाएगा, तो हम दोनों ही नष्ट हो जाएंगे। आखिर, हम दोनों का पेट तो एक ही है। जब यह विष-फल हमारे पेट में पहुंचेगा तो उसके दुष्प्रभाव से न तो मैं बच पाऊंगा और न तू ही बच सकेगा। क्या तू यह बात नहीं जानता है? मैं फिर कहता हूं कि तू इसे मत खा!''

''लेकिन, मैं तो अकेला ही खा रहा हूं। उस दिन तूने भी तो अकेले ही वह मधुर फल खा लिया था। अब तू अकेले खाने का मजा चख!'' यह कहकर दूसरे मुंह ने उस विष-फल को खा लिया। विष-फल खाते ही भारुंड पक्षी मर गया और उसके साथ-साथ उसके दोनों मुंह भी मर गए। मरते समय पहले वाले मुंह को इस बात पर पछतावा था। वह सोच रहा था कि उस दिन मधुर फल खाते समय मैंने दूसरे मुंह को थोड़ा-सा हिस्सा क्यों नहीं दे दिया था! यह मेरी उसी भूल का परिणाम है कि आज हम दोनों ही मृत्यु के मुख में जा रहे हैं।

# सोने की दलदल

चित्रगीव नाम का एक कबूतर सुबह-सुबह सैर के लिए निकला । वह सुबह की सुहानी हवा में उड़ता हुआ जा रहा था कि सहसा उसकी नजर नीचे गई । उसे एक बहुत सुंदर उपवन दिखाई दिया। वह उपवन रंग-बिरंगे फूलों और फलदार वृक्षों से भरा हुआ था। उसमें एक बहुत मनोरम सरोवर भी था। वह फल खाने के लिए नीचे उतरा। एक पेड़ पर बैठकर उसने फल खाने शुरू कर दिए। भर पेट फल खाने के बाद उसने सरोवर में स्नान करने का विचार किया।

स्नान करने के लिए वह सरोवर के किनारे पहुंचा, तो उसे एक विचित्र दृश्य दिखाई दिया। पहले तो उसे डर लगा, फिर उसके मन में जिज्ञासा-सी उठी। उसने देखा कि एक चीता साधु का वेश धारण किए सरोवर के किनारे बैठा है। वह कुछ देर पहले ही सरोवर से नहाकर निकला था। उसने माथे पर तिलक लगाया हुआ था और आंखें बंद की हुई थीं, पर कभी-कभी वह कनखियों से आसपास देख लेता था। उसके एक हाथ में माला थी और दूसरे हाथ में सोने का कंगन था।

कबूतर को यह सब देखकर बड़ा कौतूहल हुआ। पहले उसने सोचा कि चीता वास्तव में साधु हो गया है और बड़े मनोयोग से भगवान का भजन कर रहा है। किंतु, जब उसने देखा कि चीता कनखियों से इधर-उधर देख रहा है, तो उसे कुछ आशंका हुई। चीता जब कनखियों से देख रहा था, तो उसकी आंखें बहुत भंयकर लग रही थीं। कबूतर ने सोचा कि यदि चीता वास्तव में भक्त हो गया होता, तो उसकी आंखों में शांति और सौम्यता होती। किंतु सौम्यता की बजाय आंखों में भंयकर कुटिलता नजर आ रही है। कबूतर को विश्वास हो गया कि चीता साधु के वेश में अवश्य ही ढोंग कर रहा है और उसके मन में निश्चित रूप से कोई न कोई पाप है। उसकी जिज्ञासा बढ़ी और स्नान करने का इरादा छोड़कर वह पेड़ पर बैठकर उस धर्तू साधु की गतिविधियां बड़े गौर से देखने लगा।

कुछ देर बाद राहगीर उधर से गुजरने लगे। उन्हें देखकर चीता जोर-जोर से बोलने लगा—"अरे भाइयो, यह सोने का कंगन ले लो।"

किंतु उन राहगीरों ने उसकी ओर कोई ध्यान न दिया। और चीते से डरकर दूसरे रास्ते पर चले गए। चीता बड़ा निराश हुआ और आंखें बंद करके पुनः माला जपने लगा। वह कनखियों से बार-बार देखता जा रहा था कि कोई उस रास्ते से गुजर तो नहीं रहा है। तभी उसे एक और राहगीर आता दिखाई दिया। उसे देखकर चीता पुनः बोला- "अरे पथिक, यह सोने का कंगन ले लो।"

राहगीर पहले तो चौंका, किंतु सोने का कंगन देखकर उसके मन में लालच आ गया। वह सोचने लगा कि सोने का कंगन तो बड़े भाग्य से ही मिल पाता है। यदि यह चीता स्वयं ही सोने का कंगन दे रहा है, तो मैं क्यों न ले लूं। ऐसा सुनहरा मौका भला कहां हाथ लग पाएगा?

किंतु तभी उसके मन में कुछ आशंका उठी। वह सोचने लगा कि कहीं यह सोने का कंगन देने के बहाने मुझे खा तो नहीं जाएगा। मुझे इसके चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। क्योंकि जो काम बे मन से किया जाता है वह पूरा भले ही हो जाए, किंतु उसका परिणाम शुभ नहीं होता। एक बार मन में सशंय उठ जाने पर बहुत सोच-समझ कर ही कदम उठाना चाहिए, तभी कल्याण होता है। अतः मैं पहले यह देख लूं कि आखिर मामला क्या है? कुछ क्षण सोचने के पश्चात वह चीते से बोला-"कहां है तुम्हारा कंगन?"

चीते ने तुरंत हाथ फैलाकर राहगीर को सोने का कंगन दिखा दिया।

राहगीर ने चीते के हाथ का कंगन देखकर उसकी बात पर विश्वास तो कर लिया, किंतु उसके मन में चीते का भय बना रहा और वह बोला, "ठीक है, कंगन तो मैंने देख लिया, लेकिन तुम तो स्वभाव से ही हिंसक हो! तुम जैसे हिंसक का क्या भरोसा?"

यह सुनकर चीते ने बड़े दुखी स्वर में कहा–"तुम ठीक कहते हो, भाई! हमारी जाति ही ऐसी है। इसलिए तुमने जो कुछ कहा, वह एक तरह से ठीक ही है। किंतु, तुमने मेरी बात सुने

बिना ही मेरे बारे में जो कुछ कहा, उससे मेरे मन को बहुत कष्ट पहुंचा है। खैर, मैं अभागा शायद इसी लायक हूं।'' यह कहकर चीता उदास हो गया।

राहगीर को चीते की यह पीड़ा सहन नहीं हुई और वह बोला—''ऐसी क्या बात हो गई?''

चीता पुनः बोला—''मेरी कहानी बहुत दुख-भरी है। पर इसमें दोष मेरा ही है। अपनी जवानी के दिनों में मैं अत्यंत दुष्ट था। मैंने बहुत-से प्राणियों को सताया। मैंने कई गायों और मनुष्यों को मार डाला और उन्हें खा गया। चीता होने के कारण हिंसा मेरा स्वभाव बन गया। किंतु मुझे अपने कर्मों का फल भी भुगतना पड़ा है। मेरी पत्नी और संतान एक-एक करके मर गए और मैं वंशहीन हो गया। यह सब देखकर मुझे अपने किए पर बहुत पछतावा हुआ और हर समय दुखी रहने लगा। मुझे हर चीज से विरक्ति हो गई। तब मुझे एक धर्मात्मा व्यक्ति मिला। उसी ने मुझे सलाह दी कि मैं दान करूं और धर्म का आचरण करूं। उसी धर्मात्मा की सलाह पर मैं धर्म का आचरण करते हुए जीवन बिता रहा हूं। मैं इस सरोवर में रोज नहाता हूं और आज मेरे मन में दान करने की इच्छा जागी है। इसलिए मैं यह सोने का कंगन तुम्हें दान करना चाहता हूं। तुम देख ही रहे हो कि मैं बूढ़ा हो गया हूं और मेरे दांत और नाखून भी टूट चुके हैं। इसलिए तुम मुझ पर विश्वास करो और मेरी जाति की हिंसक वृत्ति का विचार न करो।''

चीते की बात सुनकर राहगीर का मन पसीज उठा और फिर सोने के कंगन का लालच भी तो उस पर सवार था। किंतु वह चीते के पास जाते हुए डर रहा था। उसका डर देखकर चीता फिर बोला—''धर्म के आठ प्रकार के मार्ग बताए गए हैं—यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, धैर्य, क्षमा और लोभ न करना। इनमें से पहले चार मार्ग तो दिखावे के लिए भी किए जा सकते हैं। परंतु अंतिम चार मार्ग तो वे ही अपनाते हैं जो वास्तव में महात्मा हों। अब मैं अपने बारे में क्या बताऊं, मैं तो इतना लोभरहित हो चुका हूं कि मैं यह सोने के कंगन चाहे जिस किसी को भी दान कर देना चाहता हूं। फिर भी दुनिया अगर यह कहती है कि चीता मनुष्य को खा जाता है, तो इस कथन का तो मेरे पास कोई उत्तर नहीं है। मैं तो विश्वास ही दिला सकता हूं। आगे तुम्हारी इच्छा!''

चीते की बात का राहगीर पर बहुत प्रभाव पड़ा। चीता उसे विश्वास दिलाने के लिए आगे बोला—''अब मैं तुम्हें क्या बताऊं, भाई! मैंने तो धर्म-शास्त्र भी पढ़ डाले हैं। उनमें लिखा है कि भूखे को भोजन देना उतना ही बड़ा काम है, जितना कि रेगिस्तान में वर्षा करना। दरिद्र को दिया हुआ दान सफल होता है। सज्जनों का कहना है कि दूसरे के प्राणों को भी उतना ही प्यार करो, जितना कि तुम अपने प्राणों को करते हो। मैंने तो सज्जनों की इस बात को अपने मन में पूरी तरह बिठा लिया है। अतः मैं दूसरे लोगों के प्राणों को भी प्यार करता हूं। तुम निर्भय होकर आ जाओ। तुम्हारी दरिद्रता को देखकर ही मैं यह सोने का कंगन तुम्हें दान कर देना चाहता हूं। अब और अधिक सोच-विचार न करो और इस सरोवर में स्नान करके यह सोने का कंगन ले लो।''

अब तो राहगीर को चीते की बातों पर पूरी तरह विश्वास हो गया और वह अपने वस्त्र उतारकर सरोवर में नहाने के लिए चल दिया। वह मन ही मन बहुत प्रसन्न हो रहा था कि अब

तो उसकी सारी गरीबी दूर हो जाएगी। सोने का यह कंगन देखकर पत्नी कितनी प्रसन्न होगी! सोचते-सोचते उसे अपने आसपास का सारा वातावरण ही सोने का बना हुआ-सा लगने लगा। सामने का सरोवर भी उसे सोने का लगा। अपनी धुन में मस्त होकर वह सरोवर में घुसने लगा। किंतु वह सरोवर में अभी कुछ ही कदम चल पाया था कि वह घनी दलदल में फंस गया।

उसने दलदल से निकलने की बहुत कोशिश की, पर वह जितनी कोशिश करता, उतना ही उसमें और फंस जाता। वह घबरा गया। उसे घबराया हुआ देखकर चीता बोला—"कहां रुक गए, राहगीर! जल्दी नहाकर आओ और यह सोने के कंगन ले लो।"

राहगीर चिल्लाया—"यहां तो बहुत दलदल है। मैं इसमें से कैसे निकलूं।"

"अरे! क्या कहा? दलदल! तुम दलदल में फंस गए हो! कोई बात नहीं मैं तुम्हें इसमें से बाहर निकाल दूंगा।" चीता चिंतित होने का नाटक करते हुए बोला।

"नहीं, तुम रहने दो, मैं स्वयं ही कोशिश करता हूं।" राहगीर घबराते हुए बोला।

चीता हंसा और बोला—"यह दलदल है भाई! इसमें से निकलना आसान नहीं है। लालच भी एक तरह दलदल ही है। तुम एक बार फंस गए, तो इसमें से निकल पाना असम्भव है। अब तुम्हें कोई नहीं बचा सकता!" कहकर चीता राहगीर की ओर झपटा और उसे दबोच लिया।

राहगीर को बहुत दुख हुआ। वह अपने लालच पर बहुत पछताया। किंतु अब क्या हो सकता था। वह सोचने लगा कि धर्म-शास्त्र पढ़ लेने से ही कोई दुष्ट महात्मा नहीं बन जाता और उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। वास्तव में स्वभाव ही महत्त्वपूर्ण है। स्वभाव से ही सबकी परीक्षा होती है। मैंने इस हत्यारे पर विश्वास करके अच्छा नहीं किया। ....हे ईश्वर, मेरी रक्षा कर! मैं अब कभी लालच में नहीं आऊंगा और ऐसी सोने की दलदल में कभी नहीं फसूंगा।

राहगीर यह सोच ही रहा था कि तभी चीता उसे मारकर खा गया।

कबूतर चुपचाप यह तमाशा देखता रहा। उसे चीते की दुष्टता पर क्रोध तो बहुत आया, पर वह कर ही क्या सकता था! वह चुपचाप अपने घर की ओर लौट पड़ा। उसने यह निश्चय किया कि वह अपने साथियों को यह सारा किस्सा सुनाएगा और कभी लालच न करने के लिए कहेगा।

# पढ़े-लिखे पोंगा

आदमी पढ़ा-लिखा हो और उसमें बुद्धि न हो, तो सारी पढ़ाई-लिखाई बेकार हो जाती है । ऐसे में वह अर्थ का अनर्थ कर डालता है और सारे काम बिगाड़ देता है । ऐसे ही चार युवक थे, जो पढ़-लिखकर भी बुद्धू के बुद्धू बने रहे।

चारों युवक आपस में गहरे दोस्त थे। वे हर समय साथ रहते थे और यों ही निठल्ले घूमते थे। एक बार उन्होंने सोचा कि यों ही निठल्ले घूमते रहने से गाड़ी नहीं चल पाएगी, अतः कहीं जाकर विद्या ग्रहण करनी चाहिए। चारों ही विद्याध्ययन के लिए सहमत हो गए। एक दिन उन्होंने आपस में देश के किसी अन्य भाग में जाकर विद्या ग्रहण करने का निश्चय किया और अपने-अपने माता-पिता से इस विषय में आज्ञा लेने अपने-अपने घर चले गए।

उन चारों के माता-पिता भी उनके निठल्ले घूमते रहने से परेशान हो गए थे। अतः जब उन्होंने अपने माता-पिता से विद्या ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की, तो माता-पिता बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उन्हें आज्ञा दे दी।

एक दिन शुभ मुहूर्त देखकर वे चारों कान्यकुब्ज नामक प्रदेश की ओर चल दिए। वास्तव में उन्होंने किसी विद्वान पंडित से यह सुन रखा था कि कान्यकुब्ज प्रदेश में विद्याध्ययन बहुत अच्छा होता है, अतः उन्होंने वहीं जाकर विद्या ग्रहण करने का निश्चय कर लिया था।

कान्यकुब्ज प्रदेश पहुंचकर वे चारों एक विद्यालय में गए और वहां एक गुरु से विद्याध्ययन की इच्छा प्रकट की। गुरु ने उनकी इच्छा को सहर्ष स्वीकार कर लिया और अपने विद्यालय में रखने की अनुमति भी दे दी। अब वे चारों मन लगाकर विद्या ग्रहण करने लगे।

बारह वर्ष तक एकचित्त होकर विद्याध्ययन करने के बाद वे सब विद्याओं में कुशल हो गए। एक दिन उन चारों ने मिलकर आपस में विचार-विमर्श किया। उनमें से एक बोला— ''अब हम सारी विद्याओं में पारंगत हो चुके हैं। अतः गुरुजी को दक्षिणा देकर उनसे अपने घर जाने की अनुमति ले लें।''

चारों मित्र इस बात से सहमत हो गए। वे एक स्वर में बोले— ''हां, अब हम विद्याध्ययन करके विद्वान बन चुके हैं। हमें अपने घर से चले बारह वर्ष हो गए हैं, अतः अब अपने घर लौटना चाहिए। हमारे माता-पिता हमारी विद्वत्ता देखकर बहुत प्रसन्न होंगे। और हम पर गर्व करेंगे। अब गुरु जी को शीघ्र ही दक्षिणा दें और अपने देश चलें।''

यह सब सोचकर वे चारों गुरु जी के पास गए और दक्षिणा देते हुए उनसे प्रार्थना करने लगे— "गुरुदेव, अब हमें अपने घर लौटने की आज्ञा दें। हम सबने आपके आशीर्वाद से सारी विद्याएं ग्रहण कर ली हैं।"

गुरु जी ने उन चारों को जाने की आज्ञा दे दी और वे अपनी-अपनी पुस्तकें लेकर विद्यालय से चल दिए। उन्हें अपनी विद्या पर बहुत गर्व हो रहा था। वे यही सोचते जा रहे थे कि घर पहुंचकर वे अपने माता-पिता को अपनी विद्वत्ता के बारे में बताएंगे और जब राज दरबार में उन्हें बड़े-बड़े पद मिल जाएंगे, तो सारे नगरवासी उनका बहुत सम्मान करने लगेंगे।

वे चारों यही सब सोचते हुए चले जा रहे थे कि कुछ दूर जाकर वे ठिठक गए। उनके सामने एक चौराहा आ गया था और उनकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि उन्हें किस दिशा में जाना है। उनमें से एंक ने पूछा— "अब हमें क्या करना चाहिए? हम किस मार्ग से चलें?"

जब चारों की समझ में कुछ नहीं आया, तो वे बैठ गए और रास्ते के बारे में सोचने लगे। तभी उन्होंने देखा कि कुछ लोग एक शव का अंतिम संस्कार करने के लिए ले जा रहे हैं। वे सब शोकाकुल थे और उनकी वेशभूषा से यह प्रकट हो रहा था कि वे लोग महाजन (बनिये) हैं। तभी उनमें से एक युवक ने पुस्तक खोली। पुस्तक में से उसने एक वाक्य पढ़ा— "महाजनो येन गतः स पन्थाः।" इसका अर्थ तो यह था कि महाजन (श्रेष्ठजन अथवा जनसमूह) जिस मार्ग से गए हैं, वह मार्ग श्रेष्ठ होता है।

वे चारों युवक पढ़ तो गए थे, किंतु गुने नहीं थे। उन्हें विद्या का अभ्यास तो था, किंतु उन्हें व्यावहारिक ज्ञान बिल्कुल भी नहीं था। 'महाजन' का एक अर्थ बनिया भी होता है। पढ़े-लिखे पोंगा होने की वजह से उन्होंने 'महाजन' शब्द का यही अर्थ लगाया और बहुत खुशी से एक साथ चिल्लाए— "ठीक है, यही सही मार्ग है जिस मार्ग पर वे बनिये जा रहे हैं। हमें उसी मार्ग पर चलना चाहिए।" यह सोचकर वे चारों शव-यात्रियों के पीछे-पीछे चल दिए।

शव के साथ आए लोगों ने शव का दाह-संस्कार किया और निकट ही बहने वाली नदी में स्नान करने लगे। उन चारों ने भी उन लोगों का अनुसरण करते हुए नदी में स्नान किया। कुछ देर बाद वे लोग बनिये के उस बेटे का दाह-संस्कार करके वापस चले गए। वे चारों वहीं रह गए और सोचने लगे कि अब क्या किया जाए? इस श्मशान-भूमि से आगे अब कौन-सा मार्ग है जिस पर चला जाए। वे काफी देर तक यही सोचते रहे।

जब काफी देर सोचने के बाद भी उन्हें कुछ न सूझा, तो वे वहीं विश्राम करने लगे। तभी उन्हें एक गधा घूमता दिखाई दिया। उनमें से एक अन्य युवक ने पुस्तक खोली और उसे पलटने लगा। तभी उसकी दृष्टि दो पंक्तियों पर गई। उसने पढ़ना शुरू किया— "आतुरे व्यसने प्राप्त दुर्भिक्षे शत्रुसंकटे। राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः।"

इसका अर्थ है कि बीमारी, विपत्ति, अकाल, शत्रु के आक्रमण, राजदरबार और श्मशान में जो साथ देता है, वही सच्चा बंधु है। वे इन पंक्तियों को पढ़कर उछल पड़े। उन्होंने सोचा कि इस श्मशान में हमारा साथ यह गधा दे रहा है और शास्त्रों में यह बताया गया है कि जो श्मशान में साथ देता है, वह बंधु होता है। अतः उन्होंने गधे को अपना बंधु मान लिया और उससे लिपट गए। कोई तो उसकी गर्दन से लिपटने लगा और कोई उसके पैर धोने लगा।

वे चारों अपने उस बंधु—गधे से लिपटकर प्रसन्न हो ही रहे थे कि इधर-उधर देखते हुए अचानक उनकी दृष्टि एक ऊंट पर पड़ी। वे सोचने लगे कि यह विचित्र जानवर कौन है!

ऊंट बड़ी तेजीं से चल रहा था। गधे से ध्यान हटाकर वे चारों उस तेज चलने वाले जानवर की ओर आकृष्ट हुए। उन्हें यह पता ही नहीं चल रहा था कि आखिर यह है कौन? वे काफी देर तक उसके बारे में सोचते रहे। फिर सहसा उनमें से तीसरे युवक ने पुस्तक खोलकर पढ़ना शुरू किया—यह जानने के लिए कि यह तेज चलने वाला जानवर कौन है? तभी पुस्तक पलटते-पलटते उसकी दृष्टि एक वाक्य की ओर गई और वह खुशी से उछल पड़ा। अपने अन्य साथियों को सुनाते हुए उसने उस वाक्य को जोर से पढ़ना शुरू किया—

''धर्मस्य त्वरिता गतिः।''

वे चारों खुशी से उछल पड़े और बोले— ''हमने इसको पहचान लिया है। शास्त्रों में लिखा है कि धर्म की गति तेज होती है। चूंकि यह जानवर तेजी से चल रहा है, अतः यह निश्चित रूप से धर्म है।''

वास्तव में इस वाक्य का अर्थ यह है कि धर्म की गति अर्थात चाल तेज होती है, लेकिन उन मूर्ख विद्वानों ने इस वाक्य का यह अर्थ लगाया कि तेज गति से चलने वाला धर्म ही होता है, अतः उन्होंने उस ऊंट को धर्म मान लिया।

अब क्या करना चाहिए?—उन्होंने सोचा। तभी उन्होंने आपस में सलाह की कि धर्म का सम्मान करना चाहिए। अतः वे चारों ऊंट की तरफ दौड़ने लगे। कुछ देर बाद उन्होंने ऊंट को पकड़ लिया। तभी उनमें से चौथा युवक पुस्तक खोलकर बैठ गया और धर्म का सम्मान करने का उपाय खोजने लगा।

काफी देर पुस्तक पलटने के बाद उसकी दृष्टि एक पंक्ति पर पड़ी। वह खुशी से चिल्लाया— ''मुझे धर्म का सम्मान करने का तरीका पता चल गया है! यह देखो, इस पुस्तक में क्या लिखा है!''

शेष तीनों उसकी ओर आश्चर्य से देखने लगे और बोले— ''क्या लिखा है, जरा पढ़कर हमें भी बताओ!''

चौथा युवक जोर-जोर से उस पंक्ति को पढ़ने लगा—

''इष्टं धर्मेण योजयेत्।''

इस पंक्ति का अर्थ है कि अपने इष्ट को अर्थात अपने प्रिय को धर्म से जोड़ देना चाहिए। किंतु उन्होंने इसका कुछ और ही अर्थ लगाते हुए एक और अनर्थ कर डाला।

वे सोचने लगे कि हमारा इष्ट कौन है! तभी उनकी नजर गधे पर पड़ी। वे सब एक साथ चिल्लाए– "गधा हमारा बंधु है और इसीलिए यह हमारा इष्ट भी है। अतः इस इष्ट को धर्म (ऊंट) के साथ जोड़ देना चाहिए।" अतः उन चारों ने एक रस्सी से गधे को ऊंट के साथ बांध दिया।

एक व्यक्ति दूर से उनका यह नाटक देख रहा था। जब उसने देखा कि वे गधे और ऊंट को बांध रहे हैं, तो पहले तो वह बहुत जोर से हंसा, फिर उसने गधे के मालिक धोबी को यह सूचना देने का विचार किया।

उस व्यक्ति की सूचना पर धोबी दौड़ता हुआ आया। आकर जब उसने सारा नजारा देखा, तो उसे उन चारों मूर्खों पर बहुत क्रोध आया। उसने गधे को हांकने वाला डंडा उठाया और उन चारों से बोला– "तुमने यह क्या तमाशा किया हुआ है?"

वे चारों सकपकाकर धोबी को देखने लगे।

"तुम बोलते क्यों नहीं? तुमने यह क्या कर डाला?" धोबी गुस्से में भरकर बोला।

"हमने तो अपने बंधु को धर्म के साथ जोड़ा है। यह गधा इस श्मशान में हमारा साथ दे रहा था, इसलिए यह हमारा बंधु है।" वे चारों डरते-डरते बोले।

"अच्छा! तो यह गधा तुम्हारा बंधु है!" धोबी ने गुस्से से कहा। और फिर कुछ सोचते हुए बोला– "तो तुम लोगों के साथ भी मुझे वही व्यवहार करना चाहिए जो मैं इस गधे के साथ करता हूं।"

यह कहकर वह उन चारों युवकों की डंडे से पिटाई करने लगा। पिटते-पिटते वे बेचारे चिल्लाने लगे और अपना बचाव करते हुए किसी तरह वहां से भाग निकलने में सफल हो गए।

भागते-भागते वे एक जगह रुककर हांफने लगे, क्योंकि सामने एक नदी बह रही थी। वे रुककर खड़े हो गए और आगे के मार्ग के बारे में सोचने लगे। अचानक उनमें से एक की दृष्टि पलाश के एक पत्ते पर पड़ी, जो नदी में बहता हुआ आ रहा था। वह बोला– "यह जो पत्ता बहकर आ रहा है, वह हमें नदी के उस पार ले जाकर उतार देगा।" यह कहकर वह उस बहते हुए पत्ते पर कूद गया और नदी में बहने लगा।

उसे नदी में बहता देखकर शेष तीनों युवक घबरा गए और चिल्लाने लगे। तभी उन तीनों में से एक ने उस बहते हुए युवक के बालों का एक छोर पकड़ लिया और ग्रंथ में पढ़ी हुई एक उक्ति को याद करते हुए बोला–

"सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पंडितः।

अर्धेन कुरुते कार्यं, सर्वनाशो हि दुःसहः।"

इस उक्ति का अर्थ यह है कि सब कुछ नष्ट हो जाने की स्थिति में जो व्यक्ति आधे को त्याग देता है और बाकी बचे आधे से ही अपना काम चलाता है, वह समझदार होता है, क्योंकि सर्वनाश की स्थिति को सह पाना बहुत मुश्किल है।

अपने बहते हुए मित्र के बाल पकड़े-पकड़े उसने सोचा कि यह मित्र तो बहा जा रहा है और अब यह नष्ट हो जाएगा। अतः शास्त्र के वचन के अनुसार इस सर्वनाश की स्थिति में आधे का त्याग करके आधे से काम चलाना बुद्धिमानी होगी। यह कहते हुए उसने अपने बहते हुए मित्र का सिर काट दिया।

इसके बाद तीनों मित्र अपने दिवंगत साथी का शोक मनाने लगे। शोक मनाकर वे दूसरी दिशा की ओर आगे चल पड़े।

चलते-चलते वे तीनों एक गांव में पहुंचे। गांव वालों ने उन्हें विद्वान समझकर उनकी बहुत आवभगत की और उन तीनों को पृथक-पृथक भोजन के लिए आमंत्रित करके अपने-अपने घर ले गए।

पहले मूर्ख को भोजन में घी और खांड मिली हुई सेंवइयां परोसी गईं। सेंवइयों को देखकर उस मूर्ख विद्वान को अचानक शास्त्रों में पढ़ी हुई एक उक्ति याद आई। वह उस उक्ति को दोहराने लगा– "दीर्घसूत्री विनश्यति।"

इस उक्ति का अर्थ यह है कि दीर्घसूत्री अर्थात् आलसी नष्ट हो जाता है। दीर्घसूत्री का एक अर्थ और है—लम्बे सूतों वाला। उस मूर्ख ने दूसरे वाला अर्थ ग्रहण करते हुए सेंवइयों को लम्बे-लम्बे सूत समझकर अपने विनाश का कारण समझा और भोजन छोड़कर चल दिया।

दूसरे मूर्ख को खमीरदार मैदे की चौड़ी रोटी (मंडक) परोसी गई। चौड़ी रोटी को देखकर उसे भी शास्त्रों में पढ़ी एक उक्ति याद आई। वह उस उक्ति को दोहराने लगा— "अतिविस्तर विस्तीर्णं न तद्भवेत् चिरायुषं।"

इस उक्ति का अर्थ है कि अत्यधिक विस्तार तक विस्तीर्ण अर्थात अत्यधिक व्यस्त मनुष्य दीर्घजीवी नहीं होता। विस्तार-विस्तीर्ण का एक अर्थ अत्यधिक फैली हुई वस्तु भी है। दूसरे मूर्ख ने दूसरे वाला अर्थ ग्रहण करते हुए चौड़ी रोटी को दीर्घायु न करने वाली समझा और वह भी भोजन छोड़कर चल दिया।

तीसरे मूर्ख को भोजन में मालपुए (वटिका) परोसे गए। मालपुओं में बहुत-से छेद होते हैं। इन छेदों को देखकर इस मूर्ख को भी शास्त्र की एक उक्ति याद आ गई और वह उसे दोहराते हुए बोला— "छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति।"

इस उक्ति का अर्थ यह है कि छिद्रों अर्थात कमियों अथवा दोषों में बहुत-सी अनर्थकारी कमियां बढ़ जाती हैं। छिद्रों का अर्थ छेद भी होता है। उस मूर्ख ने उसका यही अर्थ ग्रहण किया और छेदों वाले मालपुओं को छोड़कर उठ खड़ा हुआ।

इस प्रकार वे तीनों मूर्ख बिना भोजन किए ही उस गांव से चल दिए। भूख के मारे उनका बुरा हाल था। किंतु, अपनी मूर्खता की वजह से वे तीनों ही अपने सामने परोसा हुआ भोजन नहीं ग्रहण कर सके। गांव वालों ने उनके आगमन पर पहले तो उन्हें विद्वान समझकर सम्मान-सहित भोजन के लिए आमंत्रित किया था। किंतु, जब उन्होंने उन तीनों की मूर्खता देखी, तो वे सब उनका मजाक उड़ाने लगे।

वे तीनों भूख से जर्जर हो चुके थे। उनसे चला भी नहीं जा रहा था। किंतु, वे किसी तरह अपने घर की ओर चल पड़े। तभी एक गांव वाले ने उनका मजाक उड़ाते हुए जोर से आवाज कसी— "पढ़े-लिखे पोंगा!"

तीनों मूर्खों ने जब यह सुना, तो उन्हें बुरा तो लगा, किंतु चुपचाप चल देने के अलावा उनके पास और चारा ही क्या था!

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार